विप्लव प्रकाशन संख्या—११

अभिशप्त

यशपाल

(चतुर्थ संस्करण)

प्रकाशक
विप्लव कार्यालय लखनऊ

मार्च १९५६]

मूल्य २॥)

प्रकाशक —

विप्लव कार्यालय

ल ख न ऊ

मुद्रक

साथी प्रेस

ल ख न ऊ

समर्पण

कमफल के अभिशाप में हमारा विश्वास परिस्थितियों से संघष करने के उत्साह को निर्जीव कर हमें सजीव मृतक बनाये है।

अजाने अपराधों के दण्ड को संतोष से भोगनेवाले समाज धन्य है तेरा धर्य!

क्या कभी तू अनजाने की अपेक्षा जाने हुये में औ अप्र यत्न की अपेक्षा प्र यत्न में विश्वास कर जीवन की इच्छा और अधिकार के लिये व्याकुल होगा?

इसी आशा में असंतोष का यह निश्वास तुझे अर्पित करता हू।

यशपाल

क्रम

दास धर्म

वर्षा के आरम्भ में आद्रकस जम्बूद्वीप के वाणिज्य प्रवास से लौटा। दीमा की अवस्था देख उसका हृदय मुह को आने लगा। दीमा का गुलाब का सा खिला कोमल मुख विरह में वृन्त से झर कर कुम्हला गये सेव की भाँति पीला पड़कर त्वचा सिकुड़ गई थी। नेत्र धस कर दो सूखे घावों जैसे जान पड़ते थे। यदि आद्रकस कुछ और मास विलम्ब से आता तो सम्भवत पत्नी के स्थान पर उसे दीमा की समाधि का ही आलिंगन कर आँसू बहाने पड़ते।

मिलन के आँसू बहाती दीमा का सिर अपने हृदय पर दबा आद्रकस ने निश्चय से कहा था—मुझे नहीं चाहिये भारत का धन। तुम्हें बिलखती छोड़ अब मैं कहीं न जाऊंगा। तुम्हीं ही मेरा धन हो। तुम्हें पाकर मैं सब सम्पदा पर लात मार सकता हू। तुम्हें प्रसन्न देखने के लिये यदि मुझे बावेरू के बाजारों और गलियों में सिर पर बोझ उठाने की जीविका करनी पड़े या निकृष्ट किसान भी बनना पड़े तो वह भी मुझे स्वीकार है।

आद्रकस और दीमा के दिन और रात प्रेम परिणाय में घुलकर बीतते न जान पड़े। दीमा फिर पनप गई। उसके रक्तिम लाल ओठों पर हास्य आयत नील लोचनों में मादक डोरे और गालों पर ईंगुर लौट आया। एक संध्या आद्रकस ने भारत के व्यापार प्रवास से लाये बंगदेश के झीने स्वर्ण खचित वस्त्रों से दीमा को सजा पाटली पुत्र के जौहरी से खरीदा मरकत मणियों का

हार उसके गले में पहनाया। का यकु ज के अ माल इन से उस सुवासित किया। हाथी दाँत में मढ़ा दर्पण उसके स मुख कर वह बोला– देखो अपनी छवि इस समय बावेरू मिश्र और सीरिया के चकवर्ती सम्राट आन्तिओकस की पटरानी भी तुम से ईर्षा कर सकती है।

दीमा अपने नखों की ओर देखती चुप रह गई। उसकी ठोढ़ी छूकर आन्द्र कस ने पूछा— क्यों प्रिये चुप क्यों हो? पति के समीप आने पर दीमा ने अपनी बाँह उसके गले म डाल उसकी दाढ़ी के पिंगल केशों में अपने सिर के केश मिला उत्तर दिया— हाँ इस समय मैं किसी भी पटरानी से अधिक सुखी हू परन्तु यह वस्त्र भूषण इनके कारण मुझे कितना विरह सहना पड़ा! आन्द्र कस ने दीमा को आलिंगन म ले यापार प्रवास के लिये फिर समुद्र यात्रा न करने का निश्चय दोहराया।

× × ×

एक और वर्षाऋतु बीत गई। भूमध्यसागर के त वर्ती न रों से बहुमूल्य वाणिज्य आ आकर बावेरू के समृद्ध बाज़ारों में भरने ल ा। महावणि क मरासस की द्रव्यशालाएं बहुमूल्य पदार्थों से अट गई। अपने चतुर पुत्र को स बोधन कर मरासस ने कहा— पुत्र जिस वाणि य की बिक्री समय पर नहीं हो जाती उसके मूल्य को समय खा जाता है। वाणि य की सार्थकता ग्राहक के हाथ पहुच जाने में ही है अ यथा वह यापारी के लिये केवल चिन्ता और हानि का ही कारण बनता है। हमारे संग्रहालय वाणि य से पूर्ण है। गतवर्ष समुद्रयात्रा से लौटी हमारी नावों की उचित व्यवस्था हो चुकी है। सीरिया के व्यापारियों के नाविक सार्थ (काफिले) यात्रा आरम्भ कर रहे हैं तुम भी समय नष्ट न कर यात्रा के लिये तैयार हो जाओ। वणिक का धर्म है प्रमाद रहित हो अपने द्र य को बढ़ाना। जो द्र य बढ़ता नहीं वह क्षय हो जाता है। सामुद्रिक वणिक का घर समुद्र में बहती नाव ही है और यात्रा ही उसका जीवन है। तुम्हारी आयु तक पहुचते मैं चार बार जम्बू द्वीप की यात्रा कर चुका था तीन बार समुद्र मार्ग स और एक बार हिन्दुकश लांघ स्थल माग से। यौवन ही व्यवसाय का समय है। बावेरू सीरिया और मिश्र के सम्भ्रान्त वणिक युवकों के साथ तुम भी व्यवसाय यात्रा में जाओ। भगवान ज़ीयस तुम्हारा कल्याण करगे।

पिता के आदेश को सुन आ द्र कस मन ही मन विह्वल हो उठा। पिछली यात्रा से लौटकर देखा दीमा का विरह दुख से निर्जीव प्राय मुख उसकी स्मृति में नाच गया। फिर से दूर यात्रा म जा दीमा को दुखी न करने का अपना प्रण भी याद आया परन्तु पौरुष आ म सम्मान और कर्तव्य के विचार ने उसकी जिह्वा पर ताला लगा दिया। पिता की आज्ञा उसने स्वीकार कर ली।

×   ×   ×

दीमा सारी रात रोती रही। आ द्र कस उसे गाद म लिये बैठा रहा। दीमा की विह्वलता से उसका हृदय पिघल कंठ रु ध गया। एक भी श द वह बोल न सका। ओठ दबा अपने को वश में रखने का प्रय न उसने किया। फिर भी गुलाबी हो गये नेत्रों से दो चार बूद आँसू टपक कर पिंगल मूछों की नोक और छा े तिकोनी दाढ़ी के केशों के अ त में झूल गये। दीमा के मुदे नेत्रों से अविरल धारा बह रही थी। आ द्र कस की गोद और कंधे के वस्त्र उस स भीग गये। पँलग पर बिछा स्वण तारों से खचित सुदूर भारत से आया लाल वस्त्र जहाँ तहाँ आँसुओं से भीग गया। दीमा का नीरव क्र दन न थमा। अपने आलिंगन में उसे समेटे ओठ दबाये आ द्र कस का हृदय भी रोता रहा। दोनों की विवश विह्वलता देख दीपाधार पर जलती दीपशिखा स्त ध और निश्चल थी।

सूय की प्रथम किरणों के प्रकाश में बावरू के सामुद्रिक महावणिक मश सस के विशाल प्रासाद पर शिलाओं से गडे गोल कगूरे सुनहरी हो गये। सूय की कुशील किरण गवाक्षों स अ त पुर के कक्षों म झाँकने लगीं। आन्द्र कस स रहा न गया। विह्वल और शिथिल दीमा का आँसुओं से भीगा मुख अपने कंधे से उठा उसकी घनी पलकों म भरे आँसू चूस उसने कहा—— मेरी दीमा बस   इस समुद्र यात्रा में मैं तु हें अपने साथ ले चलूंगा धय रखो।

दीमा का अविरल मूक क्र दन सिसकियों म बदल गया। वह अपने नेत्र पोंछने लगी। उसे अपने आलिंगन में और निकट समेट ओठों से लगा आ द्र कस ने कहा—— अब क्यों रोती हो प्रिये? वचन देता हू तुम्हें साथ ले चलूंगा। भद्रवंश की अनेक रमणियाँ अपने पतियों के साथ समुद्र-यात्रा में जाती हैं। महासेनानायक सीकस का तो जन्म ही नील नद के तल पर नौका में हुआ था। चि ता है केवल जल दस्युओं की।

सुगन्धित दीपक के रक्तिम प्रकाश और झरोख से झाँकती सूर्य की किरणा के मिश्रण में दीमा के रो रोकर क्लान्त पीले पड़ गये मुखड़े पर मुस्कान और आँसुओं का मिश्रण झलक गया। आन्द्रकस के गले में अपने बाहुपाश का शिथिल कर उसने कहा— अब जाने दो न प्रिय घाम फैल रहा है दासी आती होगी।

× × ×

बावेरू सीरिया और मिश्र के यवन महावणिकों का सामुद्रिक सार्थ अतलांतक महासागर के नीले तल पर श्वेत वस्त्रों की अट्टालिकाओं के समान ऊँचे पाल उड़ाता दक्षिण दिशा की ओर चला जा रहा था। नावों और पोतों का वह समुदाय अपनी विशालता और विस्तार के कारण नगर की भाँति स्थिर जान पड़ता था। समुद्र की नियमित वायु की थपकियों से हिलोर लेती इस नगर की नीली भूमि सम्पूर्ण नगर को नियमित गति से थिरकाती रहती। इस गतिमान नगर म नागरिक जीवन की स पूर्ण आवश्यकताय औ विलासिता प्राप्त थी। समृद्ध वणिकों की सेवा के लिये पोतों पर दास और दासियाँ थीं स्वादु भोजन और पान का प्रबन्ध था आलस्य और विरक्ति का दूर रखने के लिये वीणा मृदंग और नर्तकी के नूपुर की ध्वनि अविराम रूप से गजती रहती। सार्थ मगध साम्राज्य के विलासी नागरिका के लिये म य एशिया यूनान और रोम की विलास सामग्री लिये जा रहा था। म य एशिया यूनान और रोम के एश्वय्यशालियों के लिये भारत के अमूल्य वस्त्र मणि माणिक्य और मसाले क्रय करने के लिये उनके पोतों में अमित स्वर्ण भरा था। उन्हें जल दस्युओं की आशका थी इसलिये सशस्त्र सैनिकों से भरी नौकाए इस गतिमान समृद्ध नगर का घेर कर चल रही थीं। पर्याप्त धन देकर न वणिकों ने प्रबल प्रतापी सम्राट आन्तिओकस की जल सेना की सवा अपनी रक्षा क लिये क्रय कर ली थी।

महावणिक मरासस के पुत्र युवा आन्द्रकस और उसकी पत्नी दीमा के पोत कक्ष विशेष रूप से विलास की सुख सामग्री से पूर्ण थे। आन्द्रकस सार्थ के सम्मिलित प्रमोद से थक कर दीमा के उत्तजक माधुर्य से शान्ति और विश्राम देने वाले आलिंगन में उस के हाथ से रोम और एथेन्स की सुरा के प्यालों से शैथिल्य जनित प्यास बुझाता। इस सुरा से कहीं अधिक मादक

दीमा के ओठों से घट भरता वह दीर्घ यात्रा को पार किये जा रहा था। आत्म विस्मृति के इन साधनों की भी उसे आवश्यकता न थी। अतलांतक महासागर की ही भाँति दीमा के अतल और निस्सीम नयनों में वह स्वयं ही खोया था। अनेक प्रकार के जलवायु फल फूल मनुष्य और पशु पक्षियों को देख दीमा विस्मय और आल्हाद से किलक उठती।

यवन सामुद्रिक वणिकों के सार्थ ने सिंहल द्वीप में मुक्ताओं का भण्डार क्रय कर भारत के पूर्वी सागर में प्रवेश किया। सैनिक और नाविक ने सतर्क रहने लगे। उस समय कलिंगपत्तन से ले गंगा सागर तक भारत का पूर्वीय समुद्र तट चक्रवर्ती दुर्दान्त सीमुक सातवाहन से अभय प्राप्त विक्रान्त जल दस्युओं के आतंक से यवन सामुद्रिक वणिकों के लिये श्मशान की भाँति भयावह हो रहा था। इन दस्युओं द्वारा ध्वंस नावों के अंजर पंजर और मस्तूलों से भारत का पूर्वी तट बिछ गया। गौरवर्ण पिंगल केश स्वस्थ और बलिष्ठ यवन दास दासियाँ आंध्र के कृष्ण वर्ण नागरिकों की विशेष रुचि की वस्तु बन गये थे। राज प्रासाद और सामन्तों की दृष्टि में इन दास दासियों का विशेष मूल्य था। स्वदेश और स्वजन से सदा के लिये बिछुड़ दस्युओं से मोल ले लेने वाले अपने स्वामी के जिसकी प्रसन्नता अप्रसन्नता पर दासों का जीवन और मृत्यु निर्भर थी यह दास विशेष विश्वास पात्र बन जाते। इन दासों के विषय में समीपवर्ती प्रतिस्पर्धी और सामन्तों के गुप्तचर होने की भी आशंका न थी।

यवनों का नाविक साथ तट से पर्याप्त दूरी पर विशेष सतर्क भाव से गंगासागर के संगम की ओर बढ़ता जा रहा था। आन्द्रकस धन के मूल्य में चिन्ता का उत्तरदायित्व सैनिकों और नाविकों के कन्धे पर छोड़ प्रमोद मग्न था। सुरा और प्रणय की मधुर मादकता में रात्रि के दो पहर व्यतीत कर वह मधुर निद्रा में आत्म विस्मृत हो जाता। भूमध्य के दो पहर तपे सूर्य की प्रखर किरण भी उसकी निद्रा भंग करने में असफल रह जातीं। उस निद्रा को समाप्त कर पाता उस से भी अधिक सुखद दीमा के सुवासित करों का स्पर्श और उस से अधिक दीमा के मधुर अस्फुट प्रिय सम्बोधन।

ऊषा की लाली से रक्तिम पूर्व दिशा में शनै शनै सूर्य का वृत क्षितिज से उठ रहा था। यवनों के नाविक सार्थ के विशाल शुभ्र पाल सामर्थ्य भर अनुकूल वायु उदरस्थ कर सागर के शान्त तल पर गम्भीर मन्थर गति से

व्यूह बद्ध विराट राजहंसों के समान उत्तर की ओर बढ़ते जा रहे थे। नाविक और सैनिक सूर्य के दीप्त वृत्त का नमस्कार कर भगवान ज़ीयस की कृपा के लिये धन्यवाद दे मंगल की प्रार्थना कर रहे थे। तने हुए पाल सहसा आघात से नगाड़ों की भाँति बज उठे। नाविकों ने देखा—पश्चिम दिशा से आ बाणों की बौछार ने पालों को छेद दिया है। नाविक साथ में युद्ध का तूर्य बज उठा।

चौकसी के लिए नियुक्त श्याम दृष्टि नाविकों और सैनिकों ने सूर्योदय से पूर्व ही पश्चिम दिशा में जल से मिली हुई एक धूसर नीली रेखा की ओर सेनापति का ध्यान आकर्षित किया था। अनेक बार ध्यान देने पर भी उस रेखा को गतिहीन पा सेनापति ने उसे चट्टान-मात्र समझ उस की चिन्ता छोड़ दी थी। वह रेखा जलदस्यु नौकाओं की पंक्ति ही थी।

सेनापति की आज्ञा से सभी पाल तानकर बेड़े की गति बढ़ा शत्रु की पहुँच से दूर हो जाने का यत्न किया गया। बाणों की बढ़ती संख्या ने इस चेष्टा की विफलता प्रमाणित करदी। साथ के सैनिकों को अपनी शक्ति पर विश्वास था। क्षुद्र शत्रु अभी उनके कृपाणों की पहुँच से दूर था। सेनापति ने आज्ञा दी आत्मरक्षा के उद्देश्य से व्यूह रचना कर सब पाल गिरा बेड़े को स्थिर कर दिया जाय।

यवन धनुर्धारियों के लक्ष्य से बचने के लिए दस्यु नौकाएं एक दूसरे से दूर-दूर अर्धवृत्त में फैलती चली आ रही थीं। सभी नौकाओं के लिए एक ही लक्ष्य था यवन साथ। परन्तु सार्थ के लक्ष्य बेधियों के लिए छोटी छोटी नौकाओं के रूप में सौ से अधिक अस्थिर लक्ष्य थे। यवन योद्धा ढाल तलवार ले दस्युओं के समीप आने की प्रतीक्षा उन के बाणों का सहते हुए विकलता से कर रहे थे। आन्द्रकस अपनी निद्रा से जाग स्वयम् कृपाण हाथ में ले सेनापति के साथ युद्ध संचालन के लिए प्रस्तुत था। दीमा को उसने सुरक्षित स्थान में बिठा दिया।

समीप आने पर दस्युओं ने धनुषों पर जलते हुये मशाल चढ़ा यवन पोतों के पालों पर फेंकने आरम्भ किये। बेड़े में आग लग जाने से हाहाकार मच गया। दस्युओं की नौकाएं मधुमक्खियों की भाँति घिर आईं और वे बेड़े पर टूट पड़े। अनेक नाविक सैनिक व्यापारी और उनके दास आहत हुए और

भय स सुध बुध खो जल म गिर पडे। दस्युओं ने पराजित यवनों को निशस्त्र कर स्त्री पुरुषों को ब दी बना लिया। सशस्त्र दस्युओं के नियंत्रण म यवन नाविक बचे हुए बेडे को आ ध्र तट की ओर ले चले।

× × ×

लूट का स्वर्ण बहुमूल्य द्र य और ब दी दास दासियों का ले दस्युदल आ ध्र के नगरों में पहुंचे। धन का संचय करने की प्रवृत्ति स हीन आवश्य कता से अधिक धन पाये दस्यु दल जहाँ पहुचते मदिरालया के स्वामी वस्त्रा भूषणों के विक्रता और वेश्याएं लालायित नेत्रा और गदगद स्वर से उन का स्वागत करतीं। चतुर यापारी उन्मत्त दस्युओं स उनी धन लूट में छीने उनके द्रव्य को सौदे के रूप में हथिया लेते और द्रव्यों के मूल्य में दिये धन का मदिरा और दूसरे भो य पदार्थों क मूल्य में लौटा लेते। कगाल दस्यु फिर कंगाल बन जीविका के लिए साहसिक कार्य की खोज में समुद्रत की ओर चल देते। यवन दास-दासियाँ विशेष आकर्षण के पण्य थ। शारीरिक श्रम स घृणा करने वाले और वृद्ध नागरिक इन बलिष्ठ दासों की खोज में रहते। राजवंशी और सामन्त कहीं किसी दूसरे आश्रय की आशा न कर सकने वाले इन दासों को जिनका अपने स्वामी के अतिरिक्त कोई न था प्रजा स जिन का कोई सम्पर्क न था अपनी शक्ति समझते थे। वृद्ध वेश्याएं गौर वर्णा पिंगल केश यवनियों के शरीर से कौतूहलपूर्ण कामुकता का भरपूर मूल्य पाने की आशा क ती थीं। बाजार में इन ब न्दियों के आने पर उत्सव का सा समारोह हो जाता।

आन्ध्रपति महाराज सीमुक सातवाहन क अनुमति दान से ही दस्युदल का अस्तित्व था। उनकी इस कृपा के प्रति कृतज्ञता से और राजभक्ति के कर्त्तव्य स्वरूप द्रव्यों और दासों का प्रथम प्रदर्शन राज प्रासाद म होता। महाराज ने सिंहल क वृहद आकार मुक्ता चुन लिये। उन की दृष्टि दासियों और दासों की पक्तियों की ओर गई।

दीमा दासियों की पंक्ति म बैठी थी। उस क मूल्यवान वस्त्र कुचले जाकर चिथ्री हो गये थ। उस क नयनों की मादकता कातरता में और मुख की त्वचा का इंगुर भरा लावण्य भयार्त की उदासी के पीलेपन म बदल गया था। दस्युओं ने उस के केशों की सुनहली आभा दिखाने के लिये वेणी खोल दी।

का कंधों पर डाल दिया। उसके वक्ष पर वक्षा की कमनीयता दिखाने के लिये उसके कंचुकी का एक भाग फाड़ दिया गया। महाराज की दृष्टि उसकी ओर जाती देख हाथ में चमड़े का गाँठदार कोड़ा थामे दस्यु ने उस को मुस्कराने का संकेत किया। मुस्कराने का उस का प्रयास विफल रहा। महाराज की दृष्टि ठहर गई। दूसरी कुछ बन्दिनियों के साथ दीमा को महाराज की सेवा के लिये निर्वाचित कर लिया गया।

दासियों के पश्चात् महाराज की शिबिका (पालकी) दासों की पंक्ति की ओर गई। युद्ध में माथे पर लगे घाव से रक्त बह आन्द्र कस के सिर के केश और दाढ़ी मूँछ अब भी नारियल की जटा की भाँति चिपक रहे थे। एक ओर खड़ी दीमा भगवान ज्ञीयस के चरणों में प्रार्थना कर रही थी—उस का पति भी राज सेवा के लिये निर्वाचित हो जाय। जीवन भर के लिये वे एक दूसरे से खो न जाँय।

दीमा की कातर याचना भगवान् ज्ञीयस को स्वीकार हुई। महाराज की ममज्ञ दृष्टि ने आन्द्र कस में विशेषता पाई और दूसरे अन्य सुस्वरूप दासों के साथ उसे भी राजकीय सेवा में ले लिया गया।

कोमलांगी और चतुर दीमा को अन्त पुर में राजमहिषी के प्रसाधन कार्य में नियुक्त किया गया। कला मर्मज्ञ महाराज ने दीमा के लोल-लावण्य और कण्ठ माधुर्य का आभास पा अवसाद के क्षणों का उपचार करने की सेवा के लिये उसे संगीत और नृत्य की शिक्षा दी जाने की आज्ञा दी।

आन्द्र कस ने विधाता की रेखा को अटल समझ अपने कर्तव्य का निबाहा। अपनी तत्परता और प्रतिभा से शीघ्र ही वह कठोर शारीरिक श्रम से मुक्त हो दासों का नियामक हो गया। स्वामी को ही एकमेव देव समझ उसने अक्षुण्ण स्वामिभक्ति की शपथ ली वह महाराज का अत्यन्त अंतरंग अंगरक्षक नियत हो गया।

× × ×

चैत की पूर्ण ज्योत्स्ना में स्फटिक मण्डित प्रांगण में श्वेत पुष्पों का वितान तना था। शुभ्र पीठिका पर शुभ्र उपाधानों के सहारे, शुभ्र वस्त्र धारण किये मुक्ता माला पहने महाराज मेघवर्ण सामुक सातवाहन बैठे थे। दो यवनियाँ

दाय बाय श्वेत चवर डुला रही थीं। महाराज की पीठ पीछे श्रंग-रक्षक दास श्रा द्र कस सेवा में प्रस्तुत था। सम्मुख बीच का स्थान छोड़ अन्तरंग के सामन्त आसनों पर मण्डलाकार बैठे थे।

अपनी शिक्षा समाप्त कर दीमा महाराज की प्रथम सेवा के लिये प्रस्तुत हुई। वह चाँदी के सूक्ष्म तारों से खिंचे महीन वस्त्र का लहँगा और कंचुकी पहने थी। उसके आभूषण मुक्ता और श्वेत फूलों के थे। उसके केशों कण्ठ कलाइयों और कटि में पुष्प मालाय वलय वेणी और मेखला के रूप में लिपटी थीं। कोमल पदों से चाँदी के नूपुरों की ताल देते हुये वह महाराज के सम्मुख प्रस्तुत हुई। प्रांगण की स्फटिक शिला पर मस्तक रख उसने एकमेव स्वामी महाराज को दण्डवत किया।

अवसर देख वीणा और मृदंग लय से बज उठे। दासी के कर्तव्य में दीक्षित होने के पश्चात् इस समय प्रथम बार दीमा ने आ द्र कस को देखा। उस का मन हिलोर उठा। आँख भर अपने प्रणयी को देख दीमा ने नेत्र मूंद लिये। वाद्य की लय पर उसका शरीर गति करने लगा। तन्मय हो वह नाचने लगी अपने आपको निछावर कर देने के लिये।

दर्शक स्तब्ध थे। महाराज मंत्रमुग्ध भुजंग की भाँति निश्चेष्ट और स्थिर रह गये। दास आ द्र कस के नेत्र भीग गये। अपनी प्रसन्नता और कृपा प्रकट करने के लिये महाराज ने साधुवाद दे आदर के लिये नर्तकी को एक चषक सुरा सेवा में प्रस्तुत करने का अवसर दिया। विनयावनत दीमा ने सुरा पात्र प्रस्तुत किया। चषक रिक्त कर महाराज ने नर्तकी को और नाचने की आज्ञा दी। दास आ द्र कस मूर्तिवत देखता रहा।

नृत्य के पश्चात सुरा सुरा के पश्चात नृत्य। महाराज झूमने लगे।

आज्ञा पा नर्तकी पुनः सुरा पूर्ण चषक ले प्रस्तुत हुई। महाराज ने प्रसन्न हो नर्तकी की बांह थाम उसे अंक में ले लिया।

सामन्त लोग शिष्टाचार से मस्तक नवा अनुपस्थित हो गये। वादक और शरीर रक्षक परोक्ष में चले गये। केवल कर्तव्य नियुक्त अन्तरंग अंगरक्षक दास आ द्र कस अपने स्थान पर निश्चल रहा।

महाराज सुरा और सौन्दर्य की मादकता से पूर्ण तृप्ति की चेष्टा में आत्म विस्मृत हो गये। दासी नर्तकी उनके अंक में तृप्ति का साधन थी। उसका कर्तव्य और धर्म था महाराज की इच्छा।

महाराज शिथिल अंग हो निद्रा में बेसुध हो गये। मर्दित शरीर मर्दित वस्त्र दासी उनके बाहुपाश से मुक्त हो ग्रीवा झुकाये राजपीठ के समीप खड़ी हो गई। अवसाद भरी दृष्टि उसने दास आन्द्रकस के भीगे नेत्रों में डाली और सिर झुका लिया।

आन्द्रकस संज्ञाहीन सा आगे बढ़ा। दोनों के नेत्रों से आंसू बह चले। आन्द्रकस ने दीमा को अपने आलिंगन में बाँध लिया। दोनों आवेश में मूढ़ हो गये।

निद्रा में बेसुध महाराज ने पीठिका पर करवट ली और स्फटिक शिला मण्डित प्रांगण पर गिर पड़े। सचेत हो उन्होंने दास और दासी को आलिंगनपाश में देखा। क्रोध में वे चीत्कार कर उठे।

लताओं की ओट से सशस्त्र शरीर रक्षक दास निकल आये। दीमा औ आन्द्रकस के शरीर तुरंत रस्सियों में बंध गये। दास की स्पर्धा! स्वामी की भोग्य नारी के स्पर्श की?

क्रोध से महाराज का हाथ कृपाण की मूठ पर गया परन्तु वे चुप रह गये इतने वीभत्स अनाचार का दण्ड क्षणिक यातना की मृत्यु से? महा पातक अपराधियों को विचार के लिये पुनः उपस्थित करने की आज्ञा दे महाराज क्षुब्ध मन को स्थिर करने के लिये अन्तःपुर में चले गये।

कलिंग अधिपति धर्म रक्षक महाराज सातवाहन ने धर्माचार्य नीति विज्ञ न्याय मंत्री से जिज्ञासा की—ऐसे घोर अपराध का दण्ड क्या होना चाहिये?

नीति और धर्म का विचार कर शास्त्रज्ञ मंत्री ने उत्तर दिया—ऐसे महा पातक विश्वासघात का दण्ड है अंग अंग हाथी के पांव तले कुचल कर मृत्यु!

दारुण यंत्रणा से मृत्यु का दण्ड सुन दीमा सिर झुकाये खड़ी थी। दयालु महाराज के क्रोध का आवेश न्यून हो गया था। उनके मस्तिष्क में गत रात्रि के उन्माद की स्मृति की क्षीण-सी रेखा चमक गई। आर्द्र स्वर में उन्होंने कृपा की— 'दासी, मृत्यु से पूर्व क्या प्रार्थना करना चाहती है?

महाराज की करुणा से उत्साहित हो दीमा ने कम्पित विनीत स्वर में प्रार्थना की— धर्म रक्षक महाराज! यवनों के देश में मृतक शरीर चिता पर भस्म न कर पृथ्वी में गाड़ दिये जाते हैं। हम दोनों अपने देश में पति पत्नी थे। मृत्यु के पश्चात हमारे शरीरों का एक साथ समाधि दी जाने की दया हो। हम लोग स्वर्ग में फिर एक दूसरे को पा सकें।

महाराज ने सम्मति के लिये शास्त्रज्ञ मंत्री की ओर देखा। मंत्री ने उत्तर दिया— यह केवल पापमूलक अनाचार की प्रार्थना है। अन्नदाता स्वामी के प्रति विश्वासघात कर स्वर्ग की आशा करना अधर्म है। दास का केवल एक धर्म है प्रभु सेवा।

दासों को अपने धर्म के प्रति सचेत करने के लिये महाराज के पाँव तले कुचले गये दीमा और आन्द्र कल के क्षत विक्षित शरीर राजप्रासाद के द्वार पर स्तम्भों से लटका दिये गये।

अभिशप्त

अमीनुद्दौला पार्क में प्राय: ही प्रदर्शनी, मेला या जलसा कुछ न कुछ हुआ ही करता है। मेले ठेले के धक्के से परेशान हुए बिना तमाशे की सैर करनी हो तो किनारे के किसी दुमंज़िले मकान के बरामदे से हो सकती है। इस विचार से इन जाड़ों में संध्या भोजन के बाद मुँह में पान या शुक्लाजी के बच्चों के लिये जेब में लेमनड्राप ले छड़ी घुमाता हुआ मैं प्राय: शुक्ला जी के बरामदे में जा बैठता।

शुक्लाजी स्वयं जैसे बैठकबाज़ और हंसोड़ हैं उनकी श्रीमती जी भी वैसी ही मिलनसार हैं। दिनभर कारोबार की चख चख के बाद संध्या समय घण्टे दो घण्टे सभ्य और सुसंस्कृत लोगों के साथ बैठ बातचीत कर लेने से एक संतोष सा हो जाता है।

शुक्ला जी के दोनों बच्चे लल्लू और सविता मेरे कदमों की आहट ज़ीने से भांप जाते हैं। उन्हों ने आँगन में ही घेर लिया। जेब खाली करते हुए पुकारा— शुक्लाजी!

आँगन के सामने वाले कमरे के परली ओर बरामदे से झाँक मिसेज़ शुक्ला ने उत्तर दिया— आइये न! कैसे पुकार रहे हैं जैसे बिलकुल अपरिचित हों!

बिजली की हजारों बत्तियों के प्रकाश में नीचे पार्क में प्रदर्शनी का मेला खूब भर रहा था। भीड़ अधिक थी। प्रसंग छेड़ने के अभिप्राय से मुस्कराकर

मैंने पूछा— इतनी भीड़ क्या आज फिर जालौन और फतेहपुर म आतिश बाजी का मुकाबिला है ?

बात रखने के लिये मुस्कराहट म सहयोग दे मिसेज़ शुक्ला ने कहा— कुछ होगा ही लोगों की जब के पैसे खींचने के लिये कुछ न कुछ बहाना चाहिये।

अपने अभ्यास के विरुद्ध उच्च स्वर म हसकर शुक्लाजी ने कुछ न कहा। वह किरमिच की आराम कुर्सी पर पाँव फलाये नठे थ बठे रहे। दौंय । म की उगलियों म ठोढ़ी को टिकाये पीठ पीछे का पटिया पर सिर धरे वह ग भीर मुद्रा से जगमगाते प्रकाश में बावली हा रही भीड़ की आर देखते रहे। दृष्टि दूसरी ओर रहने पर भी मरे कुर्सी पर बैठ जाने की प्रतीक्षा में थ।

क्या जमाना आ गया चप्पल पर रखे अपने पाव हिलाते हुए वह बोले। शुक्लाजी की इस भूमिका में सहयोग देने के लिये श्रीमती जी के चहरे पर से मेरे स्वागत के लिये क्षण भर को आयी मुस्कराहट विलीन हो गई— अरे जाने क्या होने वाला है दुनिया म एक गहरी सांस खींच उ होंने गदन घुमा ली।

इस प्रस्ताव स पया न ग भीरता और उ सुकता का वातावरण तयार हो जाने पर धीमे धीमे शुक्लाजी ने आरम्भ किया— भाई इन समयों में जो न हा जाय वही थोड़ा है। हाँ यह जो गू गे नवाब का अहाता है जहाँ बमपुलिस बनी है वहीं उसके साथ लगी हुई सी काठरिया हैं। वहा पिछली रात खून हो गया खून। खून किया किसने ? पाँच साल के बच्चे ने। —कुर्सी पर लेटे से वह उठ बठे। यह अ यन्त विस्मयजनक समाचार सुनाने के प्रयत्न में उनकी आँख स्वयं विस्मय स फल गइ क्या विश्वास कर सकोगे ?

पाँच बरस के ब चे ने खून ता क्या किया हागा मैंने विस्मय म सहयोग दिया कोई दुघटना बेचार स हो गयी हागी। लड़के छत पर खेल रहे होंगे। यह पतंगबाज़ी धक्का दे दिया हा ?

समर्थन की आशा से मैंने श्रीमती शुक्ला की ओर देखा। उनके मुख पर विषाद की छाया गहरी हो गयी थी। कुर्सी की पीठ पर रखे अपने हाथ पर गाल टिका उ होंने एक और दीघ निश्वास लिया।

उत्तेजना में शुक्ला जी कुछ आगे झुक आये— क्या कह रहे हो ? — दोनों हाथ के पंजों को बाँध संकेत से वे बोले खून ! गला घोंटकर खून ! पाँच बरस के बच्चे ने।

आश्चर्य से फैली मेरी आँखों ने पूछा— कैसे ?

दीवार की ओर जो सब से पीछे कोठरी है वहीं एक झल्लीवाला रहता है वाला ! जात का अहीर। उसके एक पाँच बरस का लड़का और तीन बरस की लड़की थी। झल्ली ढोने वाला क्या कमा लेगा ? कभी चार-छ कभी दो ही आने। अरे अमीनाबाद फतेहगंज से बोझ उठाकर आप आधा मील या मील भर ले जाइयेगा दो चार छह छ पैसे दे दीजियेगा ? उसकी अहीरन फतेगंज में दाल दलने चली जाती। दो-तीन आने आधेक सेर अनाज ले आती। किसी तरह दोनों बच्चों को पाल रहे थे। समय जैसा है जानते ही हो। रुपये का बारह चौदह सेर मिलता था सो अब अढ़ाई तीन सेर मिलता है; वह भी अब नहीं कुअन्न। किसी तरह रूखे-सूखे बच्चों का पेट भर र थे। इस पिछले सनीचर अहीरन के एक बच्चा और हो गया।

अहीर झल्ली ढोकर जो कुछ ला पाता उसी में गुजारा चल रहा था। गुजारा क्या चूनी भूसी जो कुछ मिला एक जून आधा पेट खाकर पड़े रहे। न हुआ बच्चों को खिला दिया। खुद जैसे तैसे रात काट दी। पर छाती के बच्चे का पेट कैसे भरे ? माँ के दूध तो तब उतरे जब उसके पेट में कुछ जाय ! माँ दिन दिन स्वयं सूखती जा रही थी। कहीं पानी के लोटों से दूध बनता है ? गैया को भी तो घास भूसी कुछ चाहिये ही।

गोमाता और नारी माता की इस तुलना मक चर्चा से मेरी दृष्टि श्रीमती जी की ओर उठ गयी। वह कुर्सी पर करवट से बैठी थीं। इस भोंडी बात से वह और भी घूम गयीं। उनकी उपेक्षा कर शुक्ला जी कहते चले गये —

आज क्या हुआ ? बाप तड़के ही झल्ली ले स जी मण्डी चला गया। चुटकी भर आटा जो कुछ था माँ ने लोटे में घोल दिया। दो दो चुल्लू लड़के-लड़की को पिला दिया। पर वे अभी और माँग रहे थे। उन्हें डाँट माँ ने थोड़ा सा घोल बचा लिया। छाती में दूध था नहीं। कपड़े की बत्ती से माँ वहीं घोल नन्हें बच्चे को भी पिलाने लगी।

माँ की तबियत ठीक नहीं थी। उठ कर बमपुलिस तक गयी। लौट कर आयी तो बेचारी की चीख निकल गयी। लड़का नन्हें बच्चे का गला घोंटे बैठा था। बच्चे के प्राण निकल चुके थे। माँ सिर नोंच चिल्लाने लगी।

लोग इकट्ठे हो गये। बच्चा को धमका कर पुचकार कर पूछा—लड़की ने उत्तर दिया— भैया ने नन्हें को मार दिया।

लड़के को पुचकारा मिठाई का लालच दिया। कहता है सुनिये कहता है— अम्मा मा घोल हमें नहीं देती। नन्हें को पिला देती है। बड़ी भूख लगी थी। सुना आपने क्या समय आ रहे हैं?

वितृष्णा के स्वर में मिसेज शुक्ला ने कहा— देखिये न इन लोगों के बच्चे इतनी उम्र में भी कमे पक्के होते हैं। पाँच बरस का बच्चा भी समझता है उसका हिस्सा बटाने वाला उसका दुश्मन है। यह हमारी सविता इस सावन में पाँच की हो गयी छठा लग रहा है। खाने को दो थाली में कुत्ता मुह डाल दे तो उलटा उसे प्यार करने लगती है।

मेरी दृष्टि मिसेज शुक्ला की ओर से अपनी ओर आकर्षित करने के लिये शुक्लाजी ऊंचे स्वर में बोलने लगे— अब कहिये जिस देश में इतना पाप बस गया हो वहाँ अकाल महामारी भूकम्प जो न हो जाय वही भगवान की दया। ऐसे ही कर्मों की बदौलत तो देश दाने दाने को तरसने लगा है ओफ दूध पीते बच्चों तक के दिल में बैर और हिंसा। इसी का दण्ड तो हम लोग भोग रहे हैं।

अपनी कुर्सी पर कुछ और आगे बढ़ उन्होंने पूछा सोचिये ऐसे बच्चों का आगे जाकर क्या बनेगा?

भूख —मैं कहना चाहता था। मेरी बात काट कर शुक्लाजी और ऊँचे स्वर में बोले अजी भूख नहीं तो ऐसे कर्मों का फल और क्या होगा? ऐसे पापों का फल तो सर्वनाश होकर भी पूरा नहीं हो सकता।

मन की अवस्था बहस करने लायक न रही। पाप के कारण और फल के सम्बन्ध में सोचता रह गया—जन्म से पाप करने के लिये मजबूर यह अभिशप्त क्या कभी पाप मुक्त हो सकेंगे ?

काला आदमी

एम ए शैक सुबह दिन चढे उठे। सिरहाने की खिड़की के कॉच से छनकर सूय की किरणों ने उनकी आँखों को चकाचौंध नहीं किया जैसा कि पिछले दो सप्ताह से प्रात हो रहा था। रात म दो कम्बल स ऊपर सोये थे। सर्दी के ख्याल से या इसलिये कि नैनीताल आने के लिये इस महगी में भी दो नये कम्बल खरीदे थे। लिहाफ से आराम मिल सकता है लेकिन वह पुराने ढङ्ग की चीज़ है। लाल नीली छींट का अबरा और हरी मगजी ये इस जमाने की चीज़ नहीं है। इनका इस्तेमाल करने वाला दकियानूस मालूम होता है। विलायत में बफ पड़ती है लेकिन सब लोग क मल ही ओढ़ते हैं। साहब लोग लिहाफ इस्तेमाल नहीं करते।

शैक की आँख खुली तो सर्दी नहीं मालूम हुई बल्कि कुछ घु टा सा लगा। सोचा क्लाउडी (बदली) है। ख्याल आया पिछली रात की खुमारी भी हो सकती है। उसी समय यह भी याद आ गया कि आज नैनीताल छोड़कर नीचे जाना ही होगा। मन की उदासी से ब द कमरे की हवा और भी बोझल जान पड़ने लगी। अस्पष्ट स्वर में शक ने कहा— आ स्टम स्टफ्फी (ऊह घुट रहा है)।

शक ने पलंग पर करवट ले खिड़की से झाँका। धौले धु ये का धु धलापन दृष्टि को रोके खिड़की के सामने खड़ा था। हाथ बढ़ा चिटखनी हटा शक ने खिड़की का किवाड़ खींच लिया। झीना झीना सा धु ध खिड़की की राह

भीतर लुढ़क पड़ा। उस की शीतलता में साँस ले शैक फिर अस्पष्ट स्वर में बोला— नाइस ! (बहुत खूब !) खिड़की के सामने से होकर बहुत महीन धुनी रुई या निगन्ध धुएं का बादल सा गुजर रहा था। सामने झील के पार पहाड़ी की चोटी से लेकर प्राय नीचे झील तक ऐसे ही मलमल के-से पर्दों में छिपा दृष्टि से ओझल था। जहाँ तहाँ एक के पीछे एक उड़ते चले जाते बादलों की ओट से किसी बंगले की लाल छत या सफेद दीवार पल भर का झलक दिखा लोप हो जातीं।

नीचे झील के तरल हरे फ़र्श पर भी बादल करवट ले रहे थे। कभी झील के किसी भाग पर हरियाली झलक आती और उसम कोई थिरकती नाव कुछ क्षण दिखाई दे फिर अदृश्य हो जाती। इस धुंधले धौलेपन के अम्बर में योटक्लब की पालदार नाव अपने स्थिर श्वेत पाल उठाये ऐसे सो रही थीं जैसे कोई विशालकाय बत्तख अपना एक पंख ऊँचा उठा जल में डूबकर रह गई हो। दिखाई न पड़ने के इस सौन्दर्य से मुग्ध हो शैक कुछ क्षण खिड़की का किवाड़ थामे स्थिर आँखों से देखता रह गया। पहुंच से बाहर आकाश में मँडराने वाले बादल उसके चारों ओर उसके हाथों में और उसके कमरे से नीचे लोट-पोट हो रहे थे। फिर उसके होंठ हिले और अस्पष्ट स्वर में उसने कहा— ग्रैण्ड ! (वल्लाह !)

पलङ्ग के सिरहाने तिपाई पर पड़े सिगरेट केस से एक सिगरेट होंठों में थाम उसने दियासलाई की डिबिया पर सींक खींची। सींक का मसाला झड़ गया। वह सुलगी नहीं। तीसरी दियासलाई भी नहीं सुलगी बल्कि डिबिया का मसाला छिल गया। मुस्करा कर शैक ने कहा— आह डैम्प ! (सील गई) चौथी दियासलाई ही जल सकी। शैक की सिगरेट सुलग गई। निर्गन्ध धुएं के विराट समारोह और प्रवाह में शैक ने भी अपने फेफड़ों से शक्ति भर धुआँ और मिला दिया। विस्तर मे पहनने के चौड़ी धारी वाले कपड़े पहने उसका शरीर कम्बलों से बाहर निकल आया। समीप कुरसी पर बैठ दृष्टि खिड़की से बाहर लगाये वह धुएं के बादल छोड़ता चला जा रहा था सहसा तल्लीताल की ओर से सूर्य की तिर्छी किरणें लुढ़कते हुए बादलों को बेधती हुई झील की दलमल सतह को छू गई और फिर एक क्षण में लोप हो गई। शैक के मुख से निकल गया— स्प्लेण्डिड ! (वाह, क्या है !)

शेक स्वगत बातचीत करते समय भी अंग्रेजी में ही बोलता था। यानी वह सोचता भी अंग्रेज़ी म ही था। आईने के सामने विशेष प्रयत्न से नकटाई की गाँठ ठीक से बाँधकर उसका मन समर्थन करता— O K कहीं चलने का समय हो जान पर वह अपने आपको सचेत करता— टाइम टुबी मूविङ्ग। (चल पड़ना चाहिये)। और कभी परेशानी अनुभव कर वह बड़बड़ा देता— बोरिंग।

लड़कपन में होश सभालने और मनु य बनने का स्वप्न देखते ही उसने अंग्रेज़ी और अंग्रेज़ की बोली को शक्ति तथा आदर का प्रतिनिधि और समा नाथक देखा था। बचपन में शिक्षा अलिफ बे की तख्ती से शुरू ज़रूर हुई पर तु अंग्रेजी याद कर सकने लायक आयु होते ही उसने अंग्रजी पढ़नी शुरू की। उसके मुख से अंग्रजी का कोई श सुन होनहार बेटे के भवि य की कल्पना से पिता शेख मुश्ताक़ अहमद और उसकी माता के चेहरे पर मुस्क राहट आ जाती। ग़रीब और पद दलित काले आदमियों के विराट समूह में पैदा हो विद्या बुद्धि और भा य के बल मुनव्वर के साहब बनने का प्रयत्न जारी रहा।

मुनव्वर के पिता शेख मुश्ताक़ अहमद लड़के के भविष्य का ख्याल कर अपने इलाके से गुजरने वाले तमाम साहब लागों को सलाम बजा लाते। अवसर हाने पर साहब लोगों के हाथ की चिट्ठी का उतना ही मूल्य था जितना किसी दस्तावेज़ का। इस ज़माने में साहब लोगों की सिफारिशी चिट्ठी उतनी सुगमता से नहीं मिल पाती और न उसका वह प्रभाव ही रह गया है। उनके वालिद यानी मुनव्वर के दादा के जमाने म साहब लोगों की सनद ही सब स बड़ी बरकत और सलाम सब से बड़ा हुनर था। यहाँ तक कि वे कभी अपने गांव के समीप रेल के स्टेशन पर जाते तो गाड़ी आने के समय तक प्रतीक्षा कर गार्ड साहब और ड्रिलेवर साहब को सलाम करके लौटते।

शेख मुश्ताक अहमद के समय में सलाम और सनद दोनों की ही बरकत कम हो गई। यह बेकद्री देख उन्होंन कहना शुरू किया— अब असली खान दानी तु पे के साहब लोग विलायत से आते ही नहीं। वालिद के ज़माने में बहादुर साहब लोगों का डेरा चलता था तो दस दस घोड़े सवारी के साथ रहते। जिसने सलाम से खुश हो गये कह दिया— देखा यह गांव तुमको

जागीर में दिया। और अब क्या है टुच्चे गोरे विलायत से आते हैं। दरखास्त पर दरखास्त दिये जाओ कुछ सुनाई नहीं। जैसे हरवाहे किसान काश्तकार वैसे ही जमींदार ताल्लुकेदार। मल्का के वक्त की बात ही और थी। और जब से काला आदमी अफसर होने लगा इन्साफ रह ही नहीं गया। इन्साफ है अंग्रेज के हाथ में। अंग्रेज़ न हों तो काले आदमी एक दूसरे को फाड़ फाड़कर खा जाय। गोरे आदमी के सम्मुख झुकना उसे सलाम करना मियाँ शेख मुश्ताक हुसेन को स्वाभाविक जान पड़ता था परन्तु काले आदमी का साहब के अधिकार और अभिमान से अकड़ कर चलना और उसके सम्मुख झुकना उन्हें विडम्बना जान पड़ती थी।

मुनव्वर की धारणा दूसरी थी। उसके जीवन की महत्वाकांक्षा काले आदमी के स्वाभाविक दुःख की निराशा स्वीकार न करती। वह स्वयं साहब बनने का स्वप्न देखता था। उस के फूफा का भतीजा विलायत में डाक्टर बन कर साहब हो गया था। दूसरा एक फुफेरा भाई जंगलात के महकमे में एस डी ओ अफसर बन बिलकुल साहबी ढंग से रहता था। परिचितों और बिरादरी में भी कितने ही लोग अंग्रेज़ी पढ़ सरकारी नौकरी पा अंग्रेजी बोल अंग्रेजी ढंग से रहते थे। इन सब लोगों के साहबियत के तौर तरीके और सामान देख मुनव्वर स्वयं साहब बनने के मधुर स्वप्न में खो जाता।

इसी स्वप्न को चरितार्थ करने के लिये वह साहबियत की विद्या अंग्रेजी अनेक रूप में एम ए तक पढ़ता रहा—साहित्य गणित इतिहास और विज्ञान के माध्यम से वह अंग्रेजी ही पढ़ता रहा। कालेज में पढ़ते समय ही उसने साहबी ढंग अपना लिया। दादा और पिता की तराशी मूछों और लम्बी दाढ़ी की जगह सेफ्टीरेज़र से सफ़ाचट चेहरा चमकने लगा। बुजुर्गों की उस्तरे से घुटी चांद की जगह उसके सिर पर उतार चढ़ाव से कटे घुंघराले बाल सवारे रहते। कुरते पायजामे की जगह कमीज़ पतलून। नचे और हुक्के की जगह साफ सुथरा हलका सा सिगरेट होठों में थमा रहता जो होठों की हरकत के साथ हिलता रहता। यह साहबियत की अदा थी नज़ाकत और मर्दानगी लिये हुये।

काले आदमियों के कूड़े करकट के काले ढेर पर साहबियत की शिक्षा और महत्वाकांक्षा की बरसात पड़ने से जैसे कुछ कुकुरमुत्ते उठ आते हैं वैसे ही रूप-रंग में अपनी परिस्थितियों से मिलकर भी अपनी महत्वाकांक्षा में मुनव्वर

ने अपनी कोठरी को रूम (कमरा) बना लिया। मुनव्वर अहमद की जगह वह एम एहमड बन गया। खानदान का पुराना पद मियाँ छोड़ उसने मिस्टर कहलाना आरम्भ किया और अंग्रज़ी में शेख के स्पेलिंग (हिज्जे) बदल वह शैक बन गया।

अत्यन्त परिश्रम से प्राप्त की साहबी ढंग से साहबी बोली बोल सकने की योग्यता और अपने खानदान के लिहाज़ और प्रभाव के कारण शक का मातहत अफ़सर (Subordinate officer s grade) की नौकरी मिल गई। तनख्वाह सवा सौ रुपया थी परन्तु साहबियत के ढंग और तर्ज़ से रहने में खर्च अधिक था। बारोज़गार होकर भी वह कर्जों से दबा रहता और घर के सम्मुख याचक था परन्तु समाज के सम्मुख सधा हुआ सुथरा साहब होने की व्यवस्था जारी थी। ऊंचे दर्जे के साहब लोगों की बैठक और क्लब तक उसकी पहुंच न हो पाई। परन्तु काले आदमियों के जिस प्रवाह से वह बड़ी तपस्या से ऊपर उठ सकता था गिर कर उसमें मिल जाने के लिये भी वह तैयार न था। वह साहबों के समाज के स्वर्ग और काले आदमियों के नरक के बीच त्रिशंकु की भाँति लटका हुआ था। उसकी दृष्टि निरंतर तरक्की द्वारा ऊँची साहबियत पाने की ओर लगी हुई थी। युद्ध के दौरान में ज़रूरत के कारण काले आदमियों के लिये बन्द साहबियत के अनेक ओहदे के द्वार खुल गये। ऐसे ही किसी ओहदे पर वह भी फिसल जाये इसी आशा और प्रयत्न में वह दो सप्ताह की छुट्टी ले नैनीताल आया था। और फिर गरमी में नैनीताल न जा सकना भी तो साहबियत में कलंक समझा जाता है।

ननीताल में उसने अपनी कल्पना का स्वर्ग पाया। लखनऊ में वह साहबियत के सब शौकों के बावजूद केवल सेक्रेटेरियेट का क्लर्क था। नैनीताल में एक परिचित के यहाँ ठहर अपने सब से कीमती सूट पहन पन्द्रह दिन में तीन सौ रुपये खर्च कर वलेरियो में चाय पी कैपिटल के नाच में किसी गौरांग युवती के साथ नाच और मैट्रोपोल में लंच खा कर वह साहब के अस्तित्व को पूर्णता अनुभव कर सकता था और काले आदमी की छाप चाहे कुछ समय के लिये ही सही उस से दूर हो सकती थी।

अपने इस स्वप्न को शैक ने ननीताल में चरितार्थ भी किया। पाउडर की सुवास और ताजगी लिये गौरांग एंगलो इण्डियन युवती को बगल में ले काले आदमियों से खींची जाती रिक्शा पर बैठ गर्व से सिर ऊँचा कर साहब

लोगों के बीच वह माल रोड पर धड़धड़ाता निकल गया। मटोपौल से वह काले आदमियों के कंधों पर झूलती डाँडी में सिगरेट पीता हुआ काले आदमियों के बाज़ार मल्लीताल और तल्लीताल में से गुजरा। जब वह कपि ता में नाच के समय पेग पर पेग माँग रहा था काला आदमी खानसामा सफेद चोगा पहने कमर और पगड़ी पर पेटी लगाये उसकी पलकों के संकेत पर नाच रहा था। उस समय वह इन काले आदमियों की बाढ़ में काली लहरों के परस्पर संघर्ष से पैदा हो गई लहरों के सिर पर नाचती श्वेत झाग की भाँति अपनी नशे से मतवाली कल्पना में थिरक रहा था।

और जब रात को हलकी फुहार में गोरी मेम का हाथ चूमकर सिगरेट से धुआँ उड़ाते हुए वह काले कुलियों के कंधों पर डाँडी में लद अपने स्थान पर लौटा उसके मेज़बान उसकी प्रतीक्षा में अभी तक जाग रहे थे। एक तार उनके हाथ में था। शैक के नाम तार था उस के छोटे भाई का। दुगुनी फीस दे अर्जेण्ट तार दिया गया था। छः लाइन के तार में जीवन की महत्वाकांक्षा पूरी होने के संक्षिप्त समाचार से शैक का शरीर एक स्पंदन से सिहर उठा। स्वयं उसके और परिवार के प्रयत्नों से उसके लिये भरती के महकमे में लेफ्टिनेंट के ओहदे की मंजूरी की खबर थी और उसका सोमवार सुबह ही लखनऊ में मौजूद होना ज़रूरी था।

× × ×

जुलाई के पहले सप्ताह में वर्षा आरम्भ हो जाने पर नैनीताल से नीचे जाने वालों का प्रवाह खूब बढ़ जाता है। पैट्रोल की कमी के कारण लारियों की संख्या घट गई और नैनीताल से काठगोदाम पहुँचना कठिन समस्या बन गयी। इज़्ज़तदार लोगों के लिये ऐसी समस्या और भी कठिन होती है। ड्राइवर की बगल में एक ही सीट रहती है जिस पर बैठने से आदमी साधारण से ऊँचा और भिन्न समझा जा सकता है।

शैक अपना समान ले दो बजे से ही मोटरों के अड्डे पर मौजूद था। अनेक लारियाँ केवल फ़ौज के गोरों के लिये ही थीं। दूसरी लारियों में ड्राइवर के साथ की जगह का टिकट पहाड़ की उतराई में चक्कर आने से डरने वाले पहले से खरीद चुके थे। इस इज़्ज़त की जगह के लिये दो घण्टे तक तड़पने के बाद शैक एक रुपया बारह आने की जगह सात रुपये दे एक कार से काठगोदाम पहुँचा।

काठगोदाम से चलने वाली गाड़ी में तीन चौथाई स्थान पहले और दूसरे दर्जे के मुसाफिरों के लिये फी मुसाफिर सो सकने लायक जगह के हिसाब से उन के खाने-पीने के लिये अलग गाड़ी के साथ सुरक्षित था। शेष जगह में तीसरे दर्जे के मुसाफिर जो संख्या में पहले और दूसरे दर्जे के मुसाफिरों से सौगुने थे शहद की मक्खियों की भाँति एक के ऊपर एक लद रहे थे।

इस समस्या की ओर शैक का ध्यान नहीं गया। तीसरे दर्जे में सफ़र करने वाले काले आदमियों से उसे सरोकार भी न था। लपक कर टिकट की खिड़की पर पहुंचा— वन सेकण्ड क्लास प्लीज़। बटुआ खोल उसने अधिकार के स्वर में माँग की।

खिड़की के तंग झरोखे से दिखाई दे रही बाबू की मुद्रा स्थिर रही— सर देयस नो सीट। आल दि बर्थ्स सोल्ड। (जनाब कोई जगह शेष नहीं सब जगह बिक चुकी हैं।) बाबू ने स्थिर भाव से उत्तर दिया।

शैक निराशा से चुप रह गया परन्तु अपने को सभाल बटुए में फिर हाथ डाल और भी अधिक गम्भीर स्वर से उसने कहा— आल राइट फर्स्ट क्लास।

बाबू अब भी विचलित न हुआ— फर्स्ट क्लास के टिकट भी समाप्त हो चुके हैं।

नैनीताल की शीतल कोहरा मिली वायु से सहसा काठगोदाम की गरमी और धूप में आने से शैक के चेहरे पर पसीने की बूंदें झलक आई थीं। बाबू की तटस्थ मुद्रा और निराशापूर्ण बात से वह बह उठीं। सेकेण्ड क्लास के टिकट की कीमत तेरह रुपये आठ आने के साथ पांच रुपये का नोट बख्शीश के रूप में आगे बढ़ा कर शैक ने दुबारा टिकट के लिये अनुरोध किया। बाबू के स्वर में सौजन्य आ गया। अफ़सोस है! —बाबू ने उत्तर दिया आधी से अधिक जगह तो फौजी अफसरों के लिये पहले से घिरी रहती हैं। जगह है ही नहीं। स्टेशन मास्टर का हुक्म टिकिट बेचने का नहीं है। ठीक समझें तो तीसरे दर्जे का टिकिट ले लीजिये वर्ना शायद वह भी न मिले।

अपमान और परेशानी में शैक तीसरे दर्जे की खिड़की की ओर गया। टिकट वास्तव में नहीं मिल रहा था। भीड़ को चीर कर खिड़की तक पहुंचना सम्भव न था। काले आदमियों के मैले वस्त्रों और पसीने की गन्ध से साँस घुट रही थी लेकिन टिकट लिये बिना और सफ़र किये बिना चारा न था।

अगले दिन सुबह लखनऊ न पहुचने का अर्थ था जीवन की सफलता की आशा का डूब जाना। हाथ से निकले जाते जीवन के अवसर को पकड़ पाने के लिये शंकर दुर्गन्ध से उबकाई पैदा करने वाली उस भीड़ में धस पड़ा।

अंग्रेजी में बहस कर और टिकट लेकर जब वह बाहर निकला उसकी कमीज़ और पतलून बेलन से निकली ईख की तरह मली और विरूप हो चुकी थी। मोटर के ड्राइवर तथा क्लीनर और उसमें बहुत कम अन्तर रह गया था। गाड़ी अभी प्लेटफार्म पर नहीं लगी थी परन्तु भीड़ और असबाब के जमाव के कारण ठोकर या धक्का खाये बिना दो कदम चल सकना कठिन था।

भोजीपुरा में रात के समय कुली नहीं मिलते। इसलिये भोजीपुरा लखनऊ लाइन के मुसाफिर इस गाड़ी से कटकर सीधी लखनऊ जाने वाली गाड़ी में जुड़ जाने वाले डिब्बों में बैठने के लिये प्लेटफार्म के अगले भाग पर जमा हो रहे थे। प्रत्येक मुसाफिर जानता था—जमा होने वाले सब मुसाफिरों के लिये गाड़ी में जगह नहीं। जरा सी सुस्ती तनिक-सी शिथिलता के परिणाम में वही गाड़ी से रह जायगा। प्रत्येक मुसाफिर आवश्यक समझता था कि दूसरों से पहले वह गाड़ी में घुस और अपने स्त्री बच्चों को भीतर खींच ले। परिणाम में प्रत्येक मुसाफिर एक दूसरे को शत्रु समझ रहा था। हृदय में भरी प्रतिद्वन्द्विता और प्रतिहिंसा से भीड़ सन्ना रही थी।

प्लेटफार्म के पश्चिम की ओर से धक धक छुक-छुक करता हुआ इंजन गाड़ी को प्लेटफार्म पर धकेले आ रहा था। गाड़ी रुकने से पहले ही मुसाफिर दरवाजे खुलने की परवाह न कर खिड़कियों से ही गाड़ी के भीतर कूदने लगे।

जब तक शंकर पसीने से सराबोर टिकट हाथ में ले लखनऊ जाने वाले डिब्बे के सम्मुख पहुंचा गाड़ी भर चुकी थी। कुली फर्स्ट और सेकण्ड क्लास के मुसाफिरों के बिस्तर लगा रहे थे और वे मुसाफिर निश्चिन्त भाव से अपने डिब्बे के सामने टहल रहे थे। शंकर की दृष्टि उस ओर गई। उसने अनुभव किया वह स्वयं घोंसले से गिरे हुये पक्षी की भाँति असहाय था। लपक कर वह सीधे लखनऊ जाने वाले डिब्बे के सम्मुख पहुचा। उसके दो सूटकेस और होल्डाल अब भी प्लेटफार्म पर पड़े थे और कुली का पता नहीं। वह शायद पहले फर्स्ट और सेकण्ड क्लास के मुसाफ़िरों का असबाब चढ़ा रहा था। भरी हुई गाड़ी के दरवाज़ों से अब भी मुसाफ़िर चिपक रहे थे।

प्रतिष्ठा और औचित्य का विचार छोड़ शैक अपना सामान उठा खिड़की से भीतर ढकेलने लगा। भीतर बैठे मुसाफ़िर सामान की राह रोक रहे थे और शक उसे भीतर ठूंस रहा था। दोनों ओर से हाथों और शब्दों की शक्ति का भी उपयोग हो रहा था। शक की धमकी बेकार हो रही थी। भीतर भीड़ में पिसते किसी मुसाफिर ने सिफ़ारिश की— अरे भाई आने दो। किसी तरह मिल जुल कर मुसीबत का वक्त काटना है।

शक का सामान भीतर थाम लिया गया। वह दरवाजे की राह पिल पड़ा। पीछे से आने वाले धक्के ने उसे किसी तरह भीतर पहुंचा दिया। इस समय काले आदमियों के शरीर की दुर्गंध और मैल की ओर उसका ध्यान न गया। भीतर घुस पाने के मल्ल युद्ध से उसके फेफड़े धौंकनी की भाँति चल रहे थे। खूब सटकर चौबीस आदमियों के बैठने की जगह में ढेरों असबाब और चालीस आदमी भर चुके थे। शैक किसी तरह एक पाँव गाड़ी के फर्श पर और दूसरा अपने सूटकेस पर रखे ऊपर असबाब रखने की जगह थामे खड़ा था। अब भी गाड़ी के भीतर घुसने का यत्न करने वाले और ढेरों असबाब लिये गाड़ी में चढ़ पाने के लिये व्याकुलता से छटपटाते मुसाफिर प्लेटफार्म पर मौजूद थे।

बन्द गले का सफ़ेद कोट-पतलून पहने हाथ में टिकट काटने की मशीन लिये एक टिकट बाबू आया। उनके पीछे ऊंचे और चौड़े डील का एक अंग्रेज मुंह में दबे पाइप से धुआँ छोड़ता खड़ा था। टिकट बाबू ने गाड़ी के मुसाफिरों को बाहर निकाल कर साहब के खानसामे और बैरे के लिये जगह करने का हुक्म दिया। मुसाफिर सहम गये। तीन चार बहुत ही निरीह मुसाफिर टिकट बाबू के हाथ थाम कर नीचे खींचने से अपनी गठरी मुठरी छाती से चिपकाये कातर आँखों से देखते गाड़ी से उतर गये। साहब लोगों के खानसामे और बैरे अपना असबाब गाड़ी में ढकेल भीतर चढ़ने लगे। फर्स्ट और सेकण्ड क्लास में आराम से बैठे साहब लोगों के अर्दलियों और नौकरों का उनके साथ पहुंचना जरूरी था। छः अर्दली खानसामे अपने बाल बच्चों समेत आ पहुंचे। शक को अपना असबाब हटा कर जगह करने के लिये कहा गया। यह बात शैक के सहन की सीमा को लाँघ गई।

क्या दूसरे मुसाफिरों ने टिकट नहीं खरीदा है? तैश में शैक ने इन्तजाम करने वाले बाबू को उत्तर दिया।

टिकट का कोई सवाल नहीं —उसे उत्तर मिला टिक साहब के नौकरों ने भी तो खरीदे हैं। इनके लिए जगह की जरूरत नहीं है ?

जगह न खाली करने की हालत में शक को गाड़ी से उतार दिये जाने की धमकी दी गई। उस के अड़ जाने पर साहब के नौकरा ने ही उसका सामान एक तरफ हटा दिया। उसके देखते दूसरे मुसाफिरों को खड़ा कर साहब लोगों के छ नौकरों के लिए बठने की जगह कर दी गई। बैरे और अदली लोग बैठ कर काले आदमियों के भेड़ बक ी की तरह गाड़ी म भर आने की शिकायत करने लगे।

शक विंधा बैठा था। उस जान पड़ा—जसे यह लाँछन उस पर ही लगाया जा रहा हा। औ तुम खुद क्या हो ? —गुस्से में उसने एक अदली से घूर कर पूछा।

हैं क्या ? —अदली ने उत्तर दिया यही तो काले आदमी की आदत है कि एक दूसरे का देख नहीं सकता। दूसरे का देखकर जलता है। काले आदमी में एका बिलकुल नहीं। इनसाफ है तो साहब लोगा में।

एक के बाद दूसरा बरा और अदली अपने साहब के रोब और उदारता का बखान करने लगा। दूसरे मुसाफिरों के लिये इस का चाहे जो अथ रहा हो शैक इसे यक्तिगत आक्षेप समझ रहा था। उसके लिये इसका अर्थ था— तुम काले आदमी हो तुम साहब बन कर भी साहब की बराबरी नहीं कर सकते।

स्थान की तङ्गी के कारण एक साहब के बरे का एक सफेदपोश सज्जन से जो तङ्ग जगह म किसी तरह सिमिट कर बठा था जगह के बारे में झगड़ा हो गया। इस अन्याय के विरोध में चुप रहना शैक के लिये सम्भव न रहा। उसने बरे को डाट दिया। बात हिन्दुस्तानी में शुरू कर अंग्रेज़ी में बोलने लगा। अंग्रेज़ी की खिदमत करने वाला बैरा काले आदमी की डांट बरदाशत करने के लिये तैयार न था। अधिक कुछ सुने और समझे बिना ही उसने जवाब दिया— बड़े आये अंग्रेज़ी बोल कर साहब बनने वाले। पतलून पहन कर दो लफ्ज़ अंग्रेज़ी क्या सीख ली साहब बन गये। ऐसे बीसियों देख हैं हमने देहरी पर सिर रगड़ते।

बैरे की इस गाली से शेक का खून उबल उठा। वह गाली उसके व्यक्तित्व को न थी। परिस्थितियों के कारण वह अपने व्यक्तित्व को एक ओर रख चुका था। वह गाली थी उसकी नस्ल को जिस से छूटने बच पाने या भाग जाने का उपाय न था। फिर गाली दे रहा था एक कमीना काला आदमी। बौखला कर शेक बैरे पर हाथ छोड़ बैठा। लोगों के बीच बचाव के लिये आ पड़ने पर भी वह सीना उभार और घूंसा ताने कहता चला गया — जा अपने साहब को बुला ला! साहब के जूते क्या उठाने लगा है साहब का भी बाप बन गया! —गाड़ी में सन्नाटा छा गया और फिर धीरे धीरे फुसफुसाहट से नरों की गुस्ताखी की आलोचना होने लगी।

हलद्वानी स्टेशन पर गाड़ी थमते ही बैरा अपने साहब के यहां दुहाई देने पहुंचा। स्टेशन से गाड़ी छूटने को ही थी कि एक स्टेशन बाबू बैरे के साथ दो कान्स्टेबल लेकर आये और शेक को हिरासत में ले गाड़ी से उतर जाने का कहा। बैरे के साहब अब भी दस कदम पीछे खड़े शान्ति से अपने पाइप में धुआँ उड़ा रहे थे।

क्रोध से आंख लाल किये मुंह से कुछ बोले बिना शेक अपनी आस्तीन की बाहें चढ़ाता असबाब सहित गाड़ी से उतर आया। सुबह पहुंच नयी नौकरी पर हाज़िर होने का ध्यान उसे न रहा।

× × ×

दारोगा साहब रपट का रजिस्टर फर्श पर पटक बिगड़ रहे थे— जब रपट लिखाने वाला फरियादी ही नहीं तो हम लिखें क्या तुम्हारा सिर?

शेक का रूप रंग और ढंग देख दारोगा साहब ने उसे बैठने के लिये कुर्सी दी और एक गिलास पानी और डिबिया से पान पेश किया। स्वयं दो बीड़े पान मुंह में दबाते हुये दारोगा साहब ने पूछा— आखिर आप पढ़े लिखे शरीफ आदमी उस कमीने के मुंह लगे क्योंकर?

सान्त्वना पा शेक ने कहा— क्या अर्ज करूं जनाब! काला आदमी कह कर गाली दे रहा था।

शेक को हिरासत में लेने वाला कान्स्टेबल सामने खड़ा था। दारोगा साहब का रुख देख उसने कहा— और सारा आपुन खुद तवे का-सा काला रहा! ओ कौन अंग्रेज रहा! बहुत हाय देशी किरस्टान रहा हाय!

उगालदान में पीक छोड़ बुजु़र्गियत के अधिकार से दारोगा साहब ने फर्माया— अरे भाई इसी को तो कहते हैं जवानी बावली होती है। आपको काला आदमी कहा था तो सुन लेते! आखिर कौम और नस्ल से हम लोग काले ही हैं। आप काले हैं हम काले हैं और वह भी साला काला। उस साले को अपनी नौकरी से मतलब हमें अपनी रोटी दाल से मतलब। आप खयाल कीजिये अपनी रोजी का। वल्लाह काले आदमी की गाली से चिढ़ने लगे तो हो चुका। जो सब की गाली वह किसी की गाली नहीं। अपनी अपनी जगह कोई अपने को काला आदमी नहीं मानता और एक में मिलकर सभी काले। सो उसमें क्या?

दारोगा साहब के समर्थन में सिर हिलाकर का स्टेबल ने कहा— ठीक तो कहते हैं हुज़ूर और क्या? कोई अपने को गाली दे ससुर का सिर फोड़ दे! काले आदमी की क्या गाली? उहूँ तो जात ठहरी। उहूँ से कौन इनकारी है?

शाक पर जैसे घड़ा भर पानी पड़ गया! वह क्या उत्तर दे? लेफ्टीनेण्ट के ओहदे की नौकरी क्या यों ही हाथ से गई इन्हीं काले आदमियों के कारण था? यह जात का कालापन कैसे धुले?

समाधि की धूल

इनके बारे म तो सुना था—बडे भले आदमी हैं बहुत पढे लिखे हैं अमृतसर के किसी कारखा ने में मनेजर हैं। सुसराल का ध्यान कर घबराहट होती थी। सुना था—बञ्र दिहात है पहाड़ म यास नदी के किनारे। रेल तो क्या नदी पार मोटर-लारी भी नही जाती निराले रीति रिवाज हैं।

बिदाई में छोटे भैया सुसराल तक साथ गय थे। बेर बेर पूछते जाते—जल या खाने को कुछ चाहिए? गरमी तो नहीं लग रही? कुछ और जरूरत हो तो कहो? —ओढ़नियों और फुलकारियों की तहों में य लिपटी थी कि किसी तरह साँस भर ही आ रही थी। लज्जा के मारे बोल भी न पाती। सिर हिलाकर रह जाती।

नदी के किनारे मोटर लारी रुकी। नायन ने उलझ गये कपड़ों को सुलझा क धे को सहारा दे लारी से उतार पालकी में बैठा दिया। नदी पर नाव नाव पर पालकी और पालकी पर मैं ऐसे नदी पार कर कुछ दूर गये। बरात के साथ बाजे बज रह थे। इनके अतिरिक्त सामने से भी बाजों का स्वर सुनाई दिया। बरात के साथ के बाजों का स्वर और उचा हो गया। समझा पहु च गये।

हमारे स्वागत में बाजे सुसराल के द्वार पर बज रह थे। यों तो जो होना था हो चुका था। मैं अब इसी घर की वस्तु थी परन्तु द्वार पर पहु चे तो कन पटियों से पसीने की धार एड़ी तक बहने लगीं। हृदय की गति बढ़ गयी।

बाजों की तुमुल वनि पटाखों और ब ूकों का शo मगलाचरण गाती स्त्रियों के कण्ठ का सम्मिलित अस्पष्ट प तु ऊँचा स्वर पुरुषों की झु झ लाहट चिंता और हुकूम ा भ ी आवाज विराट समारोह का गोलमाल हो रहा था। मरे छोटे से हृदय में मेरा ससार बदल हा था। कभी मे मैं इस दिन की प्रतीक्षा और तयारी कर रही थी। व सब तयारी यथ र ी हृदय आतंक से बैठा जा रहा था सिर म चक्कर आने लगा।

गीत गाती स्त्रियों के गिरोह ने पालकी का घेर लिया। पर्दा उठा बाह थाम मुझ बाहर आने का संकेत किया गया। कापते पैरा से मैं द्वार की ओर सरकने लगी। कुछ गोलमाल-सा सुनाई दिया। स्त्रि ा का गाना रुक गया? पहले समाधि पूजी जायगी। इधर चलो न। भूल गये। हाँ हाँ चलो! —मेरे क धे थामे स्त्रियों ने मुझे घुमा दिया।

गोलमाल म भैया का उत्त जित स्वर सुनाई दिया— यह मब मसान मढ़या पूजने के खुराफात नहीं होंगे। क्या तमाशा हो रहा है?

उत्तेजित स्वर में उत्तर मिलने लगे— यह तुम्हारा घर नहीं है। हमारे रीति रिवाज कसे नही होंगे?

किसी ने शा ि त से समझाया— भाई पीर मसान की पूजा नहीं है। गाव का ऐतिहासिक स्थान है। नये ब्याहे लड़के लड़की के लिये आशीर्वाद की कामना से ऐसा किया जाता है। इसमें हज की कोई बात नहीं है। —मन में आया भैया यथ में झंझट कर रहे हैं। जब मुझे दे ही डाला ता अब तुम्हारा अधिकार क्या? स्त्रियों का गिरोह चलने लगा। उसके बीच कंधा से थामकर मुझे चलाया जा रहा था।

कुछ लड़के लड़किया उ साह से भागते हुए आगे आगे चल रहे थे। स्त्रियों ने हथेलियों पर जल के लोटे और पूजा के सामान की थालिया ली हुई थीं। मरे आचल के छोर में इन के दुपट्ट के छोर की गाठ बाधी। ये भी चल रहे थे। स्त्रियां बेमेल तीखे स्वर में गाती जा रही थीं। स्त्रियों की खिलखिलाहट और बच्चों की चीखों क बीच समाधि की आरती उतारी गई। हम दोनों न समाधि पर माथा टेका। लौटकर द्वार चार और ूसरी रीतिया बहुत देर तक होती रहीं।

सिमटी बैठी थी। दिन भर की थकावट से शरीर जकड़ सा रहा था। आंख नींद से भारी थीं परन्तु मुंद न पाती जैसे उनमें तिनके अड़ हों। उनसे उकट वच्चा अभी आने का था।

बिना आहट किये आ व मेरे समीप पलंग पर बैठ गये। मैं और सिमिट ग । कुछ सोचकर उन्होंने पूछा—रास्ते में कोई तकलीफ तो नहीं हुई? चुप रही। स्वयम् ही कहने लगे—इस सफर से थकावट बहुत हो जाती है। आराम से लेट जाओ न। लज्जा से मेरा सिर झुक गया।

कुछ और सोचकर बोले—समाधि की पूजा से भैया को बुरा लगा। पर उसमें ऐसी कोई बात नहीं है। कोई पीर मसान नहा है। लोग उसे प्रमियों की समाधि या बल्लू चमेली की समाधि कहते हैं। यहाँ इस समाधि की बड़ी मानता और महत्व है। यह पथर की पूजा नहीं भाव की आराधना है।

तकिया बगल में ले वे करवट से हो गये— आराम से लेटो?—उन्होंने आग्रह किया परन्तु मैं लजा कर वैसे ही सिमटी रही।

सुनाने लगे—

यह बल्लू चमेली की समाधि कहलाती है।

यहां से दस कोस ऊपर पहाड़ में एक गाँव है पतिया। बल्लू उसी गाँव के गूजर रद्दू का बेटा था। भला सा जवान। गरीब मां बाप का बेटा। चीड़ के पेड़ों की घाटी में पतिया है उस पर रेहड़ में डामू की बस्ती है। डामू के राधे साह का बड़ा नाम था। तीस चालीस कोस में उनकी हवेली की धूम है। चमेली राधे साह की बेटी थी; ओस में भीगी सुन्दर निर्मल और सुगन्ध से भरपूर चमेली की कली।

बल्लू अपने गाँव और डामू के गारू चराता था। एक रोज उसने बीच की घाटी की बावड़ी पर चमेली को देखा। देखा चाहे पहले भी हो, पर किसी क्षण का देखा कुछ और ही हो जाता है। हो सकता है किसी पिछले जन्म के संस्कार जाग उठे। बल्लू चमेली के पीछे हो लिया।

पास पड़ोस में चर्चा होने लगी। चमेली का घर से निकलना बन्द हो गया। बल्लू अपने गारू छोड़ दिन रात डामू की बस्ती की परिक्रमा करने लगा। दुपहर की वायु से सांय सांय करती चीड़ों के नीचे घटा टोप अंधेरी

काली रात म डामू के नीचे श्मशान से और मूसलाधार वर्षा म किसी भा समय चमेली को टेरती बल्लू की बासुरी की तान सुनाई दे जाती।

राधेसाह अपना अपमान समझ ूजर के लड़के पर ब त बिगड़े। रठवू के छप्पर म आग लगवा दी। उनके आदमी लठ लिए बल्लू को मारने के लिए फिरते रहते। कहते हैं—बल्लू के गोरू को घेरकर बैठ जाते और वह प्रम का देवता उन्हें प्रम की बंशी सनाता। एक दिन राध साह के नौकर ने बल्लू पर लटठ उठाया। बल्लू खड़ा हसता रहा। डामू क ही एक साँड ने उठाकर नौकर को चट्टान पर दे मारा। उसकी दा पसली टूट गइ।

चमेली पर कड़ा पहरा था कभी हवेली क आँगन मे निकलने न पाये। राधे साह ने लड़की की सगाई भिजवा गाँव के मिटठू साह क लड़के से शादी कर दी। प्रेमी के मन की आह लगी। लड़क का साँप डस गया।

यहाँ से चार कोस ऊपर ादी किनारे जलेश्वर का स्थान है। बसाखी के दिन जलेश्वर के पूजन का बड़ा महा म और पुण्य है। यहाँ बसाखी का बड़ा भारी मेला लगता है। दूर दूर स बिसाती हलवाइ और तमाशे वाल आते हैं। झूले पड़ते हैं रहट लगते हैं। दस पंद्रह कास क भीतर काई आदमी नहीं जो इस मेले म न आता हा।

मेले में राधे साह लड़की को ले पूजन कर मनौती मानने आय। बल्लू का तो सूरत ही चमेली में लगी थी। उसके हृदय से कैसे छिप सकता था। अदृश्य तार से बधा वह भी नगे पाँव से चट्टानों पर लहू टपकाता बंशी बजाता मेले में पहुँचा।

चमेली पूजन के लिए नये कपड़ पहिन कर आयी थी। काली सूफ की तग स थन (पायजामा) गुलाबी कुरता और पीली आढ़ना मे गोटा टका हुआ। माँ भावजों और सहेलियों से घिरी वह बिसाती के यहाँ टिकुली बुदे खरीद रही थी। बल्लू की दृष्टि उस पर पड़ी और पुकार बठा— चमेली!

माँ भावजें और सहेलियाँ चमेली को दूसरी ओर ले गई। बल्लू पालतू कुत्त की भाँति उनके पीछे पीछे चला। स्त्रियों ने उसे गालियाँ दीं। बल्लू चुप रहा परन्तु चमेली को एक बेर देख पीछा न छाड़ा।

धम-स्थान का मेला ठहरा। सब भले घरों की बहू बेटियाँ वहाँ पूजन

के लिये आती हैं। ऐसा अनाचार वहा कैसे सहा जाय ? लोग जमा हो गये। बल्लू को डाट-फटकार और नसीहत करने लगे। बल्लू के मन में प्रेम का आनन्द समा गया था। वह खडा गाली, लानत और फटकार सुन मुस्कराता रहा। केवल चमेली को उसने अपनी आँखो से ओट न होने दिया।

"चमेली की माँ और सहेलियाँ उसे ले शिवपूजन के लिये मन्दिर मे गईं। वह बावला भी मन्दिर के भीतर धँसने लगा। प्रेम भगवान के सच्चे पुजारी के लिये ही भगवान के चरणो मे स्थान न था। उसे धक्के दे बाहर निकाल दिया गया। वह उठा और फिर भीतर चला। राघे साह ने अपने गॉव के लोगों को पुकारा। बल्लू पर लात, घूँसे और पत्थर पड़ने लगे। उस के माथे का खून एडी तक बह गया। चमेली को देख पाने के लिये मन्दिर मे घुसने के प्रयत्न से वह न हटा।

"मन्दिर के भीतर कोने में खडी सहेलियों से घिरी चमेली यह देख रही थी। कहते हैं—उस युग मे हर के लिए सती ने तपस्या की थी। उसी का बदला हर, बल्लू क रूप मे तपस्या कर दे रहे थे। सती चमेली से न रहा गया। आँसू बहाते हुये अपनी माँ की बगल से आकर उसने कहा—इतना ही मेरा प्यार है तो नदी मे जाकर डूब मर !....क्या मेरी जग हँसाई करा रहा है ?

"ऊपर पहाडी से [illegible] व्यास जलेश्वर में आती है। जल तीर जैसा तेज और बरफ जैसा ठण्डा। नदी बडी-बड़ी और पैनी चट्टानो से भरी है। नदी की धार इन चट्टानो से टकराती है तो बॉसा ऊँची फुहारें उठती रहती हैं। नदी का पाट फेन से भरा रहता है। मनुष्य तो क्या, यदि समूचे वृक्ष का कुन्दा भी उसमे गिर जाय तो छिपटी उड जॉय।

"चमेली की बात सुन बल्लू जैसे क्षण भर को सहम गया। फिर नदी की ओर मुँह कर दौड़ पड़ा। सब लोगों के देखते-देखते वह नदी मे कूद पड़ा।

अभी लोगों की भौचक दृष्टि उसी ओर थी कि जैसे हवा में बिजली कौंद गई, बल्लू के कदमो पर चमेली दौड़ती दिखाई दी। उतनी ही तेज और उस से भी अधिक उतावली। कोई कुछ समझ या बोल सके, इस के पहले ही वह भी नदी के उमडते फेन में कूद पडी।

"विस्मय-स्तब्ध बेबस लोगो की पंक्तियाँ नदी किनारे खड़ी थीं पर कोई क्या कर सकता था ?

"प्रेम की महिमा' '! अगले दिन लोगों ने देखा—यहाँ एक चट्टान पर एक-दूसरे की बाहों में लिपटे, दोनो के शरीर रखे है। भक्ति-भाव से उठा लोगो ने उन्हे सद्गति करने के लिये चिता दी। परन्तु उनकी तो सद्गति पहले ही हो चुकी थी। यहीं उनकी समाधि बनाई गई। अब जलेश्वर के पूजन के साथ इस समाधि की पूजा होती है। ब्याह के पश्चात्, द्वार-प्रवेश से पहले नयी आई बहू के साथ वर 'प्रेमियो की समाधि' की पूजा करता है। लोगो का विश्वास है, इससे उनमे कभी प्रेम-क्षय नहीं होता। जिन घरो मे कलह रहती है, वहाँ लोग समाधि की धूल ले जाकर रख लेते हैं। इससे पति-पत्नी की कलह दूर हो जाती है।

"अलौकिक प्रेमियो से संतत् प्रेम का वरदान पाने के लिये ही वह पूजा की गई थी।"

सास रोके मैं सुन रही थी। प्रतिक्षण उनके स्वर मे बढता परिचय उनके स्वर के माधुर्य को बढाता जा रहा था, बात समाप्त हो जाने पर हृदय से एक गहरा निश्वास उठा और मेरा सिर प्रेम के माधुर्य की स्मृति और नवीन अनुराग से झुक गया।

मेरा श्वास रुकने लगा—अक्षय और संतत् प्रेम का वरदान पा, अनु राग की प्रथम घड़ी में ही प्रेमी को धोखा दे जीवन को कैसे विषाक्त करदूं ? सिर झुकाये चुप रह गई। आँसू छलक आये। और भी तरल अनुरोध से उन्होने बाह मेरी पीठ पर रख दोहराया—"बोलो!"

होठ काट आँसुओ का घूंट भर उत्तर दिया—"प्रेम करना सीखा था!"

× × ×

कितनी ही बेर समाधि पर अनन्त श्रद्धा प्रार्थना कर, समाधि की धूल ला घर के कोने-कोने मे रख चुकी हूं' ' पर उस धूल को उन के हृदय में कैसे रख पाउँ ……"

रोटी का मोल

रामगोपाल [illegible] की आढत की कोठी मे मुनीम है। वे दिन कुछ और ही थे। आढत की कोठी का गरिमामय, गम्भीर वातावरण चितापूर्ण निष्क्रियता, आशंका और उत्तेजना में बदल गया। ज़ाहिर कारोबार एक तरह से चौपट था। कई महीने चढा-चढी और तेजी की ले-दे रही। फिर अचानक कण्ट्रोल की अफ़वाह सच्ची हो गई। जैसे मदरसे मे छोटी जमात के लड़के मास्टर साहब की गैरहाजिरी मे खूब मार-पीट और धमा-चौकडी मचा रहे हों, अचानक मास्टर साहब आकर मेज़ पर बेंत फटकार दें, लड़के आशंका से सन्नाटा खींच जाय लेकिन दिल में गुब्बार भरा रहे; उत्तेजना उमड़ती रहे। ठीक यही हाल बाज़ार का था।

लालाजी मसनद के सहारे बैठे उँगलिया चटखाते जाने क्या-क्या सोचा करते थे? कभी बड़े मुनीम हरलाल को संकेत से बुला कान मे कुछ बातचीत कर लेते। फ़ोन की घण्टी भी लगातार टन-टन नहीं करती। दलालों का अँगोछे की आड़ में लालाजी और हरलाल के हाथ की उँगलिया थाम-थाम भाव के लिए झगड़ना अब न होता। कोठी की कल-कल, कॉय-कॉय बन्द हो गई। कहार पानी के डोल और पान के बीड़े लाने से परेशान नहीं होता। फ़ोन पर भाव नहीं पुकारे जाते। इतना ही इशारा होता—"कहो तो फिर आवें!" कोई दलाल आता तो अधूरी-अधूरी बातें होतीं। इन आशंकित स्वरों और अधूरी बातों में और भी अधिक उत्तेजना रहती।

रामगोपाल अपनी जगह पर बैठा गरदन उचका देता। खातों में बीजक चढ़ते रहने पर भी उसके कान उस ओर खिच जाते। वह कोठी में सब से छोटा मुनीम था। बहुत-सी बातें उसे मालूम न थीं परन्तु शंकित और उत्तेजित होने लायक बहुत कुछ वह जानता भी था। वह जानता था, भदोरिया और गौरी मे सेठजी ने हाल मे तीस-तीस हजार मन गेहूँ और चना भरा है। मुनीम हरलाल के साथ वह भी वहाँ गया था। कानपुर मे भी अपने कई कोठे हैं। कण्ट्रोल की वजह मे ऐसा जान पड़ता मानो कोठी की सम्पत्ति पर शत्रुओं का आक्रमण हो रहा है। लाला जी और मुनीम लोग शत्रुओं से घिर कर जी-जान से मुकाबिले के लिये तैयार हैं।

मंझले मुनीम किसनलाल की आदत थी, सुरती मलते-मलते कोई न कोई चटपटी बात शुरू कर देते। वे कोठी के सम्वाददाता थे। बड़े मुनीम हरलाल बाज वक्त उन्हे 'नारद महाराज' कहकर मज़ाक भी कर देते। किसनलाल कभी चमनगज मे किसी हिन्दू औरत के मुसलमानो द्वारा इक्के पर भगा लिये जाने की कहानी, कभी 'तिलक हाल' में कांग्रेस की तलाशी की और कभी 'हटिया' मे कॉंग्रेस के वालण्टियरो पर लाठी-चार्ज होने की खबर सुना देते। इन बातों का चर्चा किसनलाल के सुरती मलते रहने तक ही रह पाता।

कारोबार की कोठी में राजनीति के पचड़े का क्या स्थान ? ये बातें हैं, अवारा और बेकारो की। पर अब किसनलाल 'कण्ट्रोल और राशनिग' की खबर सुनाते तो लम्बी बहस छिड़ जाती। सेठ जी भी बोलने लगते —"कण्ट्रोल से क्या हो जायगा ? अरे भाई, व्यापारी ने दाम लगाये हैं, वह दाम निकालेगा नही ? कोई अन्धेर है क्या ?"······ कहीं जबरन भाव लगते हैं ? बस नहीं है हमारे पास ··है ही नही ! जाओ !"—लाला हाथ की उँगलियाँ हवा में नचाकर कहते, "उन्हे कोई नफा-नुकसान भरना है ? अफसरो की अपनी हजारो रुपये की तनख्वाहे खरी हैं। गवर्मेंण्ट मन चाहे भाव खरीद सकती है व्यपारी ऐसे थोड़े ही कर सकता है ? उसे तो बाजार-भाव खरीदना, बाजार-भाव बेचना। उसे दाम नहीं मिलेंगे, माल बाजार मे लायेगा क्यों ? पड़ा रहने दो साले को। जिसे लेना होगा दाम देगा ?"

हरलाल गाली देकर बोल उठते—"······गवर्मेंण्ट क्या खाकर बेच लेगी ? लेगी कहाँ से ? माल तो है व्यापारी के हाथ, भाव लगायेगी गवर्मेंण्ट ?

··· ऐसा कभी हुआ है ?····सरकार पहले अपना पेट तो भर ले ? करोड़ो मन तो फौज का खर्चा है । कोई अपना पेट काट कर दे क्या ? बाजार में माल है ही कहाँ जो गवर्मेण्ट खरीद लेगी ?''

किसनलाल बोल उठते—"गाव-गाव सरकारी खरीद होने की खबर है ।" हरलाल उचक उठते, "तुम्हीं न जाओ गाव से खरीद लाओ ? अरे, जेठ में तो किसान चादर झाड़ बैठता है । यहाँ पूस-माघ मे सरकार गाव से गल्ला खरीदेगी ?"

किसनलाल और छेड़ देते—"गल्ले की जब्ती की भी तो उड़ रही है !" सेठ जी तैश में आ जाते···"जब्ती न हो गई, मजाक हो गया । गल्ले की जब्ती गवर्मेण्ट करेगी ? पहले बजाजे की करे । कपड़े का भाव नहीं चढ़ा है क्या ? हर-एक के पाच-पाच हो रहे हैं ? बिसात का माल नहीं चढ़ा क्या ? करे, गवर्मेण्ट जब्ती करे ।"

"ऐसा कहीं हो सकता है ?"—हरलाल समाधान करने लगते, "गवर्मेण्ट ऐसा कहीं कर सकती है ? तब तो दुनिया ही पलट जाय । व्यापारी के माल की जब्ती करेगी तो टिक्कस कहा से लेगी गवर्मेण्टँ ? गवर्मेण्ट का काम जान-माल की हिफाजत करना है······ ऐसा होने लगे तो हुकूमत चल चुकी । यह सब बड़ी-बड़ी मिलें हैं········· ये मुनाफा नहीं ले रहीं क्या ?······· सब को सरकार जब्त कर सकती है ?······"करे ? अन्धेर मच जाय" ।"—अन्याय के प्रतिकार के लिये वे उत्तेजित हो उठते ।

रामगोपाल गरदन ऊँची कर सुनता रहता । वह स्वयं भी उत्तेजित हो उठता—बेचारे गल्ले और आढ़त के व्यापारियों पर सरकार कितना जुल्म कर रही है । कभी सेठ जी कोई कोठा-खत्ती बेच डालते तो खरीद के भाव से वर्तमान भाव की तुलना कर वह मन ही मन उत्साहित हो उठता ।

कण्ट्रोल का पहला प्रभाव मिट गया । बाजार ऋट नहीं, गुप्त रूप से चल रहा था और फिर तेजी आ रही थी । गेहूँ बारह रुपया मन हुआ और अभी प्रतिदिन पैसा-दो पैसा चढ़ रहा था । दूसरे मुनीमों और रामगोपाल का माहवार खर्च महँगाई की वजह से बढ़ गया था । पहले केवल बीस रुपये महीने उसे मिलते थे अब सेठ जी ने छब्बीस रुपये कर दिये । बीस के छब्बीस हुये पर हाल पहले से भी बुरा था । तब साढे तीन-चार का आटा महीने में

निबटता न था, अब वह बात चौदह-पन्द्रह मे नही हो पाती। सभी चीजों के दाम गल्ले की तरह, बल्कि उससे कहीं ऊँचे थे। यह सब संकट झेलकर भी दूकान मे बैठते समय तेजी की खबर मे रामगोपाल की स्फूर्तिमय उत्तेजना होती। कही उसके पास भी इस समय रकम होती ·· एक कोठा कहीं उस ने भी ले लिया होता; बीस-पच्चीस हजार बन गये होते! वह नहीं हो सका फिर भी तेजी से कौतूहल और स्फूर्ति होती ही थी—वैसे ही जैसे भयंकर बाढ़ का पानी गॉव की गलियो मे चढता देख गाव के बच्चे नया खेल आया समझ पुलकित होने लगते हैं।

× × ×

रामगोपाल गुड़मुरी मारे रजाई में लिपटा पड़ा था। नींद टूट जाने पर भी जाड़ा-सा मालूम दे रहा था। मन चाह रहा था तमाम रजाई अपने शरीर पर अच्छी तरह से लपेट ले परन्तु पीठ पीछे सोये भानू के उघड़ जाने के भय से निश्चल सिमटा पड़ा रहा। सोच रहा था—उठते तो पर जाड़ा है। पिछले बरस वह जल्दी ही उठ जाता था। बिन्ध्या कुल्ला करने के लिये उसे जल का लोटा दे चूल्हा सुलगा देती। वह बच्चा क लिये टिकिया सेकती और राम-गोपाल जरा आँच ताप लेता। कोठरी मे ईंधन का सोधा-सोधा धुआँ भर जाने से जाड़ा मालूम न देता। सुबह-सुबह रोटी बन जाती। गरम-गरम खा वह नौ बजे जा कर कोठी खुलवाता। अब सुबह आँच नही जल पाती। जले कैसे? मन ही मन उसने गाली दी—ईंधन ····रुपये का चार पसेरी मिल रहा है—ईंधन न हुआ चन्दन हो गया। उपलों को क्या आग लगी है; पैसे के दो। यह भी क्या जंग पर जा रहे हैं? आटा रुपये का तीन सेर, पूरा पड़े तो कैसे?

रामगोपाल सुबह लैया-चने चबा दूकान चला जाता। बच्चे भी वही चबा लेते या मा उनके लिये साँझ को शकरकन्द भून कर रख लेती। दोप-हर बाद खूब अबेर से, तीन-चार बजे खाना होता। दोनो जून का एक ही बेर में निबट जाता। घर मे जैसे भी निबाह ले पर बाहर दुनिया में आबरू रखना जरूरी है। कोई कुली-कहार तो हैं नहीं, कि चाहे उघाड़े फिरे। कोठी में मुनीम है। जाड़े के लिये उसने मोटे सूती चारखाने का कोट सिला लिया।

विन्ध्या को सर्दी से खासी आने लगती है। सोचा था, चारखाने का एक

सलूका उसके लिये भी हो जाता। गुन्जाइश न थी, सो हो नहीं सका। पर कलख रामगोपाल के दिल में बनी थी।

समीप ही दूसरी खाट पर मुनिया को लिये बिन्ध्या सो रही थी। घर में एक ही रजाई थी, बिन्ध्या के दहेज को। बिन्ध्या रजाई उसी की खटिया पर रख देती। स्वयम वह एक सूती कम्बल में पुरानी लोई जोड़, मुनिया को सीने से चिपटा, रात काट देती। रामगोपाल सोचता जाड़ा तो उसे भी लगता होगा, पर करे क्या? जब-तब ख्याल आ जाता और वह मन ही मन रिघने लगता। इस समय भी रजाई मे सिकुड़े ऐसा ही ख्याल आ रहा था।

जान पड़ा गली मे कोई पुकार रहा था—भैया रामगोपाल! ए मुनीम जी! भैया रामगोपाल हो! लच्छी की आवाज थी। किवाड़ो बर खट खट भी सुनाई दी।

रामगोपाल ने उत्तर दिया—"कौन है; लच्छी है क्या?"—और पाव में उलझती लॉग सम्भाल, किवाड़ खोल पूछा, "क्या है लच्छी?"

धीमे स्वर में लच्छी ने कहा—"सेठ जी हवेली पर बुला रहे है। बड़े मुनीम जी और किसनलाल भी हैं। सब लोग आधी रात से हैं। बड़ा जरूरी काम है भैया! तुरतै आ जाओ!...... समझे!"

"आते हैं।"—बेबसी से रामगोपाल ने उत्तर दिया।

आहट से बिन्ध्या की भी आँख खुल गई। अपने शरीर का कपड़ा लड़की को ओढाते हुये उसने कहा—"हाय, हाय, किवाड़ तो बन्द कर दो! लड़की को हवा लग जायगी। उसे पहले ही से सर्दी हो रही है।"

रामगोपाल ने किवाड़ बन्द करते हुये कहा—"जल दो, कुल्ला कर लें। सेठ जी ने बुला भेजा है।"

बिन्ध्या उठी। खाट के नीचे कटोरे से ढकी लुटिया पाँव लग जाने से लुढ़क गई और कटोरी से कठोर झनकार गूँज उठी। उसके स्वर से रामगोपाल के शरीर में शीत से खड़ी हो रही रोम-राशि और भी सतर्क हो गई। वह भन्ना उठा—"अन्धी हो क्या?"

करुण स्वर में बिन्ध्या ने विरोध किया—"सुबह-सुबह कैसे बोल बोलते हो! अब अंधेरा है तो क्या करूं? लड़के को दो दिन तो तेल के लिये

भेजा। भीड़ में उलटे मार खा कर चला आया, नहीं मिला तो क्या दिये में अपना सिर दे दूं ?"

रामगोपाल जल का लोटा ले आगन मे निकल गया। लौटा तो छोटी लड़की गुड़ के लिये जिद्द कर रही थी। उसे सुना विन्ध्या ने कहा—"अब सुबह-सुबह कहाँ रखा है गुड़! कौन ले आता है मिठाई तेरे लिये जो रख दूँ सामने ?"

रामगोपाल समझ रहा था, उसी पर ताना है; पर उत्तर न दिया। कमीज पर रुई की पुरानी बण्डी पहिनी, ऊपर से सूती कोट के बटन बन्द किये और चलने को हुआ। विन्ध्या ने अँगोछा बढ़ाकर कहा—"चून निबट गया है। ले आओगे तो आज को होगा।"

सेठ जी की हवेली की ड्योढ़ी लाघ रामगोपाल बैठक मे पहुँचा ही था कि शिकायत के स्वर मे मुनीम हरलाल ने स्वागत किया—"वाह पण्डित, अच्छे रहे! अब आ रहे हो ? तुम्हारे भरोसे रहते तो जाने क्या हो जाता!"

सेठजी शाल ओढे मसनद के सहारे बैठे थे। नीद भरी लाल चिन्तित आखें एक बार उन्होने रामगोपाल की ओर उठा दी। इतना ही उसके लिये पर्याप्त था।

रामगोपाल की उपेक्षा कर सेठ जी, बड़े मुनीम और किसनलाल से बात करते रहे। हरलाल आयु के कारण पाली पड़ गई आँखो मे, अनिद्रा की लाली लिये सफेद मूछों पर हाथ फेरते हुए कह रहे थे—"बड़ी मुश्किल से गोविन्द जी को राजी कर पाये भैया! हाशिम भाई तो टाले दे रहे थे। हम ने कही, चोखेलाल की खत्तियां की बात फैल गई तो बाजार तीन-चार आने की मंदी से खुलेगा' ' सबके दिये जल जायंगे।" फिर बोले" "भाई, जो गोविन्द जी कहे अपना भी समझ लो!"

किसनलाल घुटनो के बल बैठ चादर कधो पर लपेटते हुये बोले—"चले थे बेटा खत्ती भरने, कमसरियट की सप्लाई के ज़ोर पर। लाख मन चावल 'कण्डम' हो गया। इतने मे दम निकल गया।' ....व्यापारी के गज़ भर का सीना होना चाहिये! बेटा औरों को भी ले डूबते!"

"गोविन्द जी भी, नाम तो इतना है"—हरलाल कहने लगे, "पर दिल

कुछ है नहीं।" चोखेलाल की बात सुनी तो लगे हाथ-पैर फूलने। और
बोले, "खिलवा के हाते की खत्ती हम नहीं लेंगे। सुन। है दो साल पु
है... घुन रही है।"

सेठजी ने आशंका भरी दृष्टि हरलाल की ओर उठाकर पूछा—"तो
बिलकुल ?"

हाथ बढ़ाकर हरलाल ने उत्तर दिया—"अजी नहीं, और हुआ भी
क्या; दो हज़ार मन ? ... एक खत्ती गई भी तो क्या ? बाज़ार में इक्ता
जाता तो ? दस-बीस हज़ार मन का क्या पता चलता है इतने में ? रुपये
पाई-आधी-पाई ... ।"

दीर्घ निःश्वास से आसन बदल सेठजी बोले—"तो फिर मुनीम जी क
को भेजकर ताले बदलवा दो न! हा, ज़रा उस कोठे को भी देख लेना"

रामगोपाल ने समझा—चोखेलाल अढ़ाई लाख मन चावल की सप
कमसरियट मे कर रहे थे। कमसरियट के पेमण्ट के जोर पर लाला ने बह
कोठे खत्ती का भाव पूरा का कर लिया था। हुण्डी तरने की तारीख आ
और कमसरियट ने चावल 'कण्डम' कर दिया। सत्तर-अस्सी हजार मन
कोई चीज होती है। बाजार से गल्ला निकल जाने के कारण भाव चढ़
था। इतना गल्ला एकदम आ जाने से भाव गिरता नहीं तो क्या ?" ...
रामगोपाल के मन मे चोखेलाल के प्रति ग्लानि-सी भर गई—सेठजी का
दिल है, हाशिमभाई और गोविन्द जी को मिला कर सब समेट लिया।

लच्छी और जमना कहारो मे ताले उठवा रामगोपाल-चोखेलाल के को
पर अपने ताले गिरवाने चल दिया। चमनगंज, प्रेमनगर, एलनगंज अ
लाईनपार अहातो मे घूम-घूमकर ताले बदलवाते दो बज गये। रामगोपाल
घुटनो तक और चेहरे पर धूल चढ़ रही थी। सूती कोट से भी पसीना छल
लगा। चाबियो का गुच्छा काँख मे दबाये वह नयागंज से लौट रहा था।

बाजार मे पच्चीस-तीस आदमियो की एक टोली लाल कपड़े पर सफे
हंसिये-हथौड़े का झण्डा लिए और बास की खपच्चियो पर लगे गत्ते के टुक
पर 'मुनाफा-खोरी बन्द करो! गल्ला चोरी बन्द करो!' लिखे, घूमे उठ
उठा बावलो की तरह खुराफात चिल्ला रहे थे—'मुनाफाखोरों का गल्ला ज
करो ... मुकम्मिल राशनिंग हो ... ?'

भीड़ मे इस हुल्लड़ से रामगोपाल को राह नही मिल पा रही थी। परेशानी मे उसने कहा—साले कहीं के चोर-बदमाश "   मुनाफा बन्द करो ! मन ही मन उसे चिढ़-सी उठी—मुनाफा बन्द हो जाय तो दुनिया कैसे चले ?

एक गली के मुहाने पर खड़े हो टोली के एक आदमी ने कन्धे मे लटका बिगुल बजा दिया और कनस्तर पर खड़े हो दाये हाथ का घूंसा उठा लेक्चर देने लगा—"भाइयों, हम लोगो का गल्ला कहाँ गया ? गल्ला पैदा करने वाले किसान भी दाने-दाने को तरस रहे हैं। तमाम गल्ला मुनाफाखोरों ने समेट लिया। जब हमारे बच्चे भूखे मर रहे है, यह लोग लाखों-करोड़ों मन गल्ला कोठो और खत्तियों मे भर कर हमें भूख से तड़पा रहे हैं। इनका मुनाफा कौम की मौत के मोल है। सब गल्ला जब्त होकर गरीबो को ठीक भाव से मिलना चाहिये ! भाइयो, मुहल्ले-मुहल्ले गल्ला कमेटिया बनाओ। सरकार पर जोर डालो कि गल्ला आपकी कमेटियो की मारफत ठीक भाव पर बिके।"

एक ओर जगह देख रामगोपाल आगे निकल गया। मुनाफाखोरी के खिलाफ लेक्चर अब भी चल रहा था। उसके मन मे हुआ कि हाथ मे चाबियो का भारी गुच्छा उठा, लेक्चर देने वाले को अंगूठा दिखा दे—ले-ले गल्ला !

रामगोपाल ने सोचा कि दूकान पर चाबी देने जायगा तो और देर होगी, पहले एक रुपये का आटा घर दे आये। एक दूकान पर जा कर पूछा। बनिये ने भाव बताया, पौने तीन सेर। रामगोपाल को धक्का-सा लगा—"क्या जुल्म करते हो लाला ?"—उसने अधीर स्वर में पूछा, "एक ही दिन मे पाव भर बढ़ा दिया ?"

हाथ फैला, बेबसी दिखाते हुए लाला ने उत्तर दिया—'भैया, जिस भाव पाते है, बेचते हैं। बाजार में गल्ला है ही नहीं। कहा से लाये ?"

चाबियों के बोझ को दूसरे हाथ में बदलते हुए रामगोपाल ने साहस किया—"काहे, कण्ट्रोल की दूकान पर तो चार सेर का बिक रहा है ?"

"होगा भैया, बिकता होगा"—पीछा छुड़ाने के ढंग से लाला ने उत्तर

दिया, "अपने को कण्ट्रोल का भाव मिलता नही'''' ''देख लो ! यहा है ही कहा ? यह चुटकी भर रखा है। चौके में यो ही निबट जायगा।

ओठ काटते हुए रामगोपाल ने सोचा, वह जरूर कण्ट्रोल की दूकान पर जायगा। सवा सेर का फरक कम नहीं होता ! '''' साले बेईमान कहीं के ! दूकान पर चाबियाँ उसने बडे मुनीमजी के सामने रख दीं। खाते से आँख उठा उन्होंने पूछा—"सब देख-जोख लिया है न ठीक से ?'''''''घर नहीं गये क्या ? झपट के हो आओ ? फिर तनिक हाशिम भाई के यहा काम है। तुरतै आ जाओ !"

भूख और मानसिक क्षोभ के कारण रामगोपाल चुप रह गया। मसनद के सहारे बैठे सेठ जी ने उसकी ओर देख कर कहा—"अब कहाँ जाओगे ?" फिर हरलाल को सम्बोधन किया, "कहार से कह कर पूड़ी न मंगा दो !" पूड़ी के नाम से रामगोपाल के मुख में पानी आया ही चाहता था कि दिमाग में सुबह से भूखे जगन, मुनिया और बिन्ध्या की याद उठ आई। कुछ कह न सका। मुनीम जी ने सिफारिश की—"नही घर हो आने दो, सुबह का निकला है !"

पुराने पम्पशू के तल्ले को फटफटाते रामगोपाल कलट्टरगंज की ओर चल दिया। कण्ट्रोल की दूकान अभी बन्द थी। हिन्दी-उदू के मोटे-मोटे अक्षरों में एक तख्ती पर लिखा था—गेहूँ १) का चार सेर। सामने सैकड़ों की भीड़ थी। कुछ लोग दूकान से बिलकुल सट कर बैठे थे। कुछ लोग बोरी या चादर का टुकड़ा लिये भीड़ के चारों ओर टहल कर प्रतीक्षा कर रहे थे। मैले से चदरे का टुकड़ा काख मे दबाये, भीड़ से बच कर खडे, अपने ही जैसे, अपेक्षाकृत एक भलेमानुस को सम्बोधन कर रामगोपाल ने पूछा—"दूकान खुली नही अभी ?"

समीप खड़े दूसरे आदमी ने उत्तर दिया—"अभी कहा, साढे चार बजे हवलदार साहब आ कर खुलवाने ने।" भीड़ की ओर संकेत कर गाली दे उसने कहा, "सब साले भुक्खड़ कहीं के ! मार-पीट करने लगते हैं। देखो तो, ससुर दिन चढे से आ बैठे हैं।"

भीड़ के किनारे बैठे एक जर्जर, पिंजर-मात्र शरीर बूढे ने आवाज ऊँची कर उत्तर दिया—"बैठे नही तो क्या ?'''''''कल हम दोपहर में आये और

हमारे बाद आये लोग हमे ढकेलकर, लेकर चले गये। हमें मिला ही नहीं। पाच-पाच जने खाने वाले हैं। आज हमें किसी साले ने धक्का दिया तो हम ईंट मार साले का सिर फोड़ देंगे। चाहे फासी हो जाय ; और क्या ?"

उसका उत्तर देने दस-पाच खड़े हो गये—"बड़े आये सिर फोड़ने वाले। देखें किसके सीने पर बाल हे ? हम सुबह से बैठे हैं। हम सब से पहले लेंगे ?"

भीड़ में दबी एक बुढिया ने दोनों हाथ उठा कर कहा—"अरे भैया, हम सब से पहले आये थे। देखो, धक्के देकर हमे कहा हटा दिया और सब लोग आगे हो गये। हमारे इत्ते-इत्ते बच्चे हैं, कल के भूखे ! हमें कोई दिला दो, हवलदार साहब ! हुजूर के बच्चे जीते रहे।"

बावेला सा मच गया। किसी ने पुकारा—"देख लो हवलदार साहब, अभी मे ये लोग दंगा कर रहे हैं ! हम कह देते हैं, हाँ।"

दूसरी ओर से हाथ भर का डण्डा उठा चिल्लाकर हवलदार साहब ने ललकारा—"ऐसे किसी को नहीं मिलेगा। चलो, सब लोग लैन डोरी करो !"

रामगोपाल के समीप खडे, अपेक्षाकृत भलेमानुस दिखाई देने वाले आदमी ने कहा—"कल लड़के को भेजा था। लौडा खाली हाथ लौट आया। आज आधी दिहाडी बिगाड़ कर आये थे, सो यहाँ कुछ मिलता दिखाई नहीं देता। इस से तो भैया पौने तीन सेर का भला, दिहाड़ी तो कर लेते हैं। अपने तो चल दिये।"

उसके सुर मे सुर मिला दूसरे आदमी ने समर्थन किया— "कुल पाच बोरी तो गल्ला आता है, यहाँ पाच सौ मुण्ड जुड़े हैं।" रामगोपाल भी लौट चला और एक गली के मोड़ पर बिना बहस किये, एक रुपये का आटा अंगोछे मे बाध, घर देने गया।

बिन्ध्या कोठरी के दरवाजे से गली मे आख लगाये, रोती हुई मुनिया को गोद में लिये समझा रही थी—"चाचा अभी आयंगे, बाजार से चून लायंगे, दाल लायंगे, गुड़ लायंगे; सकरकन्दी लायंगे।" उसकी आँखो से उद्विग्नता और बेबसी बरस रही थी। रामगोपाल के हाथ से आटे की गाठ ले लड़की को एक ओर छोड़, वह थाली मे आटा माड़ने लगी। रामगोपाल मुंह से कुछ

रामगोपाल को फिर पौने-तीन सेर देने वाले बनिये की याद आगई—कहा से लायें, बाजार मे है ही नही······ ···· और इस समय उसके अपने हाथ में ही हजारो मन की चाबियो का गुच्छा था। उसने मन मे गाली दी ····बाजार तो ससुर भरा पड़ा है। चोर कहीं के, दबाये बैठे हैं। और समझ आया कि इस सबके परिणाम में ही कण्ट्रोल की दूकान के आगे की भीड़ है। उसे जान पड़ा—यह है उसकी रोटी का मोल ?

आँखे कुछ डबडबा-सी गई इसलिये विन्ध्या की ओर से फेर लीं। सोचता रहा—इस मोल रोटी पाते हैं, नहीं तो यह भी जाये। रोटी पा सकने के लिये ही वह अपनी रोटी से हाथ धो रहा है घुनने के लिये अनाज खत्तियों मे भर रहा है।

छलिया नारी

'आस निरास भई.........' लय से गुनगुनाते रहना और आहे भर कर जीवन का दुख प्रकट करना नन्दो को नहीं आता था। दुख को रोचक और प्रभावोत्पादक रूप में प्रकट करना वह नहीं जानती थी। रसोई मे बैठी, घुटने पर सिर टेके या कोई दूसरा काम करते समय वह गहरी उदासी से सोचती रहती....हाय, कैसे कटेगी? उसके प्रत्येक दिन का आरम्भ निराशा के अंध-कूप में एक और सीढी उतर कर होता था।

और पाँच मास पूर्व? उसका जीवन उत्साह से वैसे ही बुलबुला रहा था जैसे नदी की पतली, क्षीण परन्तु सजीव धारा अपने स्रोत पर बुलबुलाती है। वे बातें किसी से कहने की न थीं परन्तु हृदय मे तो सब कुछ था। जब और लोगों की तरह संसार मे उसने जन्म लिया है तो उन्हीं की तरह पुलक और उत्साह से भरे जीवन के मार्ग में उसके लिये स्थान क्यो न होगा? जीवन के इस मार्ग पर पाव रखने से पहले उस के मन मे उमंग क्यों न उठती? कल्पना क्यो न जागती?

नन्दो को जन्म दे देने से पहले उस के माँ-बाप ने उससे कोई राय न ली थी तो जीवन के मार्ग पर उसे चला देने के लिये ही उसकी राय की क्या जरूरत थी? नन्दो का जीवन उस के माँ-बाप के जीवन का अंग था। उससे पूछे बिना उसे जन्म दे, पाल-पोस जब उन्होंने इतना बड़ा कर दिया तो आगे भी वे सब कुछ कर सकते थे और कर ही तो रहे थे।

शरीर में फूटने वाला जोबन मन में कैसे न फूटे ? शरीर मे उठते जोबन के चिन्हो को दबाया-छिपाया नहीं जा सकता परन्तु मन मे फूटती जोबन की कली को छिपाया और दबाया जा सकता है। वही नन्दो ने भी किया। चुप-चुप वह मन ही मन सोचा करती—गाँव की और सब लड़कियों की तरह एक छैला दूल्हा एक दिन उसे भी डोली में बैठा कर सुसराल ले जायगा। जहाँ वह मेहदी रचायगी, रंगीन साड़ी पहनेगी और बहुओं के जमघट में मुंह से मुंह मिला, ऊँचे स्वर मे सोहर, सावन और लाचारी गायगी। कहीं उसके लिये भी सुसराल का घर है ज़रूर। उसे मालूम नहीं कहा ?··· · ···· पर उसके माँ-बाप को तो मालूम है।

बिन्दो, सत्तो, राधा, ज्वाला कितनी ही सहेलियों के दूल्हे उसने देखे थे। गाव की बाट आते-जाते कितने ही जवान और मेले मे कितने ही शौकीन बाबू उसकी ओर तकने लगते। उनमें से ही कोई न सही परन्तु उन जैसा ही कोई एक छैला एक दिन उसे लिवाने आयगा। यौवन की फूटती कली से कल्पना की सुगन्ध उठ उसके मन को मुग्ध कर देती।

फिर गाव मे उस के ब्याह की बात भी फैल गई थी। उस मे किसी ने न कहा सही परन्तु सुन तो उसने भी लिया कि 'वह' शहर में बाबू हैं। स्वयम् ही उसने समझ लिया—शहर के सुन्दर सलोने बाबू, आराम से रहने वाले रसिया। वह ऐसा समझती क्यो न ? जीवन की सब से बड़ी वस्तु 'पति' की कल्पना सब से सुन्दर क्यो न हो ?—क़द्दावर, सलोना, हँसमुख और रसिया, बोल में मिसरी घुली हुई। अपनी आशा और कल्पना पर उसे इतना निश्चय और भरोसा था कि 'द्वारचार' के अवसर पर उसने आँख उठाकर देखने की जरूरत नहीं समझी···· · ··जन्म भर देखना ही था।

पराई चिन्ता करने वाली औरतो के मुंह से अपने पति के रूप-गुण की बात उसने जो कुछ सुनी, वह उसे भाया नही। ऐसे बकने से क्या होता है, उसने सोचा। ऐसा कभी हो सकता है ?

सुहागरात आई। विनोदसिंह की बूढी बुआ बहू को कोठरी मे बैठा गई। नन्दो समझ गई—जीवन का सबसे उत्कट और तीक्ष्ण क्षण आ पहुँचा। जीवन का रहस्य-मय द्वार खुलने वाला था। जीवन के देवता और परमेश्वर का साक्षात्कार होने वाला था। खाट की पटिया पर सिर टेके वह फ़र्श पर

बैठी थी। उसके कान, आँखें और रोम-रोम प्रतीक्षा और आशंका से सिहर रहे थे। जान पड़ता था, प्रतीक्षा के वे पल जैसे कभी समाप्त न होंगे पर कदमों की आहट एक दफे सुनाई दे जाने के बाद·· वे पल ऐसे उड़ गये कि सम्भलने का भी अवसर न मिला।

उसी खाट पर उन के आ बैठने से वह ऐसे हिल गई जैसे भूकम्प आ गया हो। थोड़ा खाँस कर उनके वे पहले शब्द !·· 'रोम-रोम जिन्हें सुनने के लिये प्यासा ' ... से जान पड़े। उनमें मिसरी नहीं घुली थी बल्कि जैसे कुल्हाड़ी का प्रहार आ पड़ा हो।

उन्होंने कहा—"देखो जी, इस घर में अदब, क़ायदे और पर्दे से रहना होगा, समझी ! · यह गाव नहीं शहर है।"

सहसा नन्दा की कल्पना बदल गई। वह आशा और कल्पना कर रही थी—उन्माद मे आँखें मूंद लेने की ? एक ठोकर ने उसकी आखें खोल उसे स्तब्ध कर दिया।

× × ×

पहली मुलाकात का असर बुरा होता है, रोब उसी दिन जमा लेना चाहिये—बुजुर्गों के अनुभव की यह बात विनोदसिंह सुन चुका था। पहली रात की पहली मुलाकात में ही दृढ़ता से व्यवहार करने का निश्चय उसने किया था। उसके रिश्ते में सबसे अधिक दब-दबा अपनी स्त्री पर कल्याणसिंह का था। औरत ने मर्द के सामने कभी चूं तक नहीं की थी। कारण था, यही पहली रात की सावधानी।

कल्याणसिंह चतुर आदमी थे। पहली मुलक़ात में भी अपना बुलबुल साथ ले गये। बुलबुल ने शरारत से पर फड़फड़ाने शुरू किये। कल्याणसिंह ने एक धौल बुलबुल की पीठ पर दी। बुलबुल चोच खोल कर रह गयी। चवन्नी की बुलबुल गई तो क्या ? कल्याणसिंह की बहू समझ गई—कितने सख्त आदमी से पाला पड़ा है। उम्र भर उसने चूं नहीं की।

विनोदसिंह से इतना न हो सका पर यह समझा देना जरूरी था कि जोरू के गुलाम बने रहने वालों में वह नहीं है। मन के उद्‌गार को समेटे परन्तु संक्षिप्त से शरीर को फैला कर वह पलंग पर लेट गया। मानो, पैताने

रखी या बैठी चीज ऐसी नहीं कि उसकी कोई परवाह उसे हो। नन्दो को सब से पहले परिचय हुआ पति के चरणा से। उसके गालों पर आँसू बह चले। विनोदसिंह ने करवट बदली। खाट के इस दफे हिलने से नन्दो के शरीर मे रोमाच नही हुआ।

"अच्छा गोड़ दबाओ।"—नन्दो को सुनाई पड़ा। संकोच और भय को वह अभी बस न कर पाई थी कि डाँट सुनाई दी, "सुनती हो कि नही···?"

नन्दो के आँसू विनोदसिंह के पाव पर टपक पडे। अपनी डाट का सफल प्रभाव देख वह बोला—"यह सब तिरिया-चरित्तर यहा नहीं चलेंगे!" ···· रोने का मतलब?"

खेल छोड़ कंडे पाथने को वैसे मा-बाप ने भी कई दफे डाटा था, मार भी पड़ी थी, पर दिल यों कभी न टूटा था। वे हड़ीले, खुरदरे पाव, जिनसे जूते के चमडे की तीखी-तीखी गंध आ रही थी, सूखे कंडो से अधिक सुखदायक स्पर्श उन का न था। नन्दो ने आँखें उठा कर शेष शरीर की ओर देखा भी नही, कोई कौतुहल भी उसे न हुआ। उसके आँसू विनोदसिंह के पाव की अबरी की-सी फटी-फटी त्वचा पर टपकते रहे।

विनोदसिंह के मन में उमग ने जोर मारा। गला पिघल गया। पुचकारा—"रोओ मत, रोती क्या हो?" नन्दो की कलाई पर उसका हाथ जा पड़ा। इन हाथों का स्पर्श पाव के स्पर्श से अधिक सरस न था। सुख का स्वप्न समाप्त हो चुका था। आँख मूंद और होठ काट उसने निश्चय किया—उसे सहना है।

×　　　　　　　　×　　　　　　　　×

जीवन की उठती उमग, जीवन की समाप्ति से मुक्ति की चाह मे बदल चुकी थी। जिस काम के लिये उसे लाया गया था सिर झुका कर उस उपयोग म वह आ रही थी। कल्पना के संसार और वास्तविक जीवन का अंतर एक ही बात में स्पष्ट हो गया—वह आई नहीं थी, उसे लाया गया था। तो फिर उसकी 'इच्छा' कैसी? 'इच्छा' तो है उसे लाने वाले की।

जब दोनो हाथो मे मुंह छिपा, घुटने पर सिर टेक वह सोच मे डूब जाती, विनोदसिंह का हड़ेला, ठिगना शरीर, पक्का सावला रंग, बड़ी-बड़ी मूंछे और

आगे बढ़े हाथ सब लोप होकर उसे केवल दिखाई देने लगता एक गिद्ध ! गांव के बाहर के खेतों में सूर्य निकलने से पहले उसने कई बार गिद्धों को निश्चेष्ट शव पर तृप्ति के लिये चोंचें चलाते देखा था। उसे जान पड़ता जैसे उसका इच्छा-रहित शरीर निश्चेष्ट शव है और विनोदसिंह एक गिद्ध।

वह मर ही जाय तो क्या ?""""जब तक वह जीवित रहेगी यह यातना जीवन में बनी रहेगी """बिना मरे इस से मुक्ति नहीं परन्तु क्या मर जाने के लिये ही वह पैदा हुई थी""बिना कुछ पाये ही""बिना कुछ देखे ही ?

आंचल में मुंह छिपा रोने से उसे सान्त्वना मिलती थी पर जी भर रो पाने की स्वतंत्रता भी उसे न थी। बुआ दिन की नींद से चौंक कर या पड़ोस की गमी-खुशी से लौट कर उसे रोता देख बिगड़ कर गाली देने लगती—"यह क्या कुलच्छन दिहात से लेकर आई है ?""""किसे रोती है ?""रोना है तो अपने पैदा करने वालों को रोये !" नन्दो गले में भरे आंसुओं को हिचक कर पी जाती। एक दिन बुआ भी चली गई। दो दुःखों में आने वाले परिवर्तन का अवसर भी जाता रहा।

× × ×

रात में आराम और सुबह भोजन पा विनोदसिंह दफ्तर चला जाता। इसी काम के लिये वह नन्दो को लाया था। नन्दो रात की यातना और दिन का निरादर लिये निर्विघ्न रोती और रोकर आने वाली संध्या के लिये रसोई और रात के लिये दिल कड़ा करती। वह सोचती—यही जीवन है। आँसुओं की झड़ी में से बिखरी हुई कल्पना की किरणें कभी-कभी इन्द्र-धनुष की भांति झलक उठतीं। बेतुकी बातों की याद आ जाती। मेले में देखे किसी सुडौल नौजवान की गुलाबी आंखें !""गांव के कुएँ पर उसके लिये जगमोहन का प्रतीक्षा करना। एक दिन उस ने कहा था—नन्दो, तुम्हारे लिये शहर से टिकुलिया और चूड़ी लाये हैं, लोगी ? बांयें हाथ का अँगूठा दिखा उसने उत्तर दिया था--ए हे, बड़े आये लाने वाले। लाला से कह दूँगी !

राह में लौटते समय वह सोचती आई—बदमाश मुड़चिरा कहीं का पीछे पड़ा है। आज वह सोचती—जगमोहन दिल से उसे कितना मानता था, चिरौरी करता था। वह अहंकार से झल्ला उठती थी। अब वह कुछ रह ही नहीं गया। एक गहरी सांस सीने से उठ आती।

नन्दो सोचती, वह मर जाय। फिर सोचती—हाय इतनी छोटी-सी उम्र मे वह कैसे मर जाय, क्यों मर जाय ? और चली जाय तो कहा? 'कहीं भी। उसे सब कुछ सह्य है।' शारीरिक पीड़ा, भूख, सब कुछ। परन्तु या निश्चेष्ट हो कर नोचा जाना नहीं।

घर के दरवाजे पर लटकी चिक से गली का जितना भाग दिखाई देता था उससे अधिक संसार उस ने देखा न था। जाय तो कहा ? परन्तु उस अनजाने भयंकर संसार मे मृत्यु से अधिक भयंकर तो कुछ नहीं ? इस निरंतर यातना से वह भी अच्छी। कई दफे उसने निश्चय किया—अपने आपको कसाई के इस काठ से हटा कर संसार के भँवर में डाल दे। दिन भर वह अपने आपको तैयार करती परन्तु दहलीज पर पहुँच पाव ठिठक जाते। वह रोने लगती। साहस आँसुओ मे बह जाता। फिर वह रात में यातना का शिकार बनती और भाग निकलने का साहस न कर पाने के लिये पछताने लगती।

आखिर एक दिन रात का विचार दृढ़ रखने के लिये, पति के दफ्तर चले जाने के बाद, उसने होठ दबा आँसू न बहाने का निश्चय कर लिया। रुके हुए आँसुओं की भाफ के जोर से उसके कदम घर से निकल पड़े। सकपकाते कदमो से चलती वह शहर के बाहर नदी के किनारे जा पहुँची। नदी में डूब मरने के लिये नहीं, एक दफे जीवन का उन्मुक्त श्वास स्वतंत्रता से हृदय में भर पाने के लिये।

× × ×

नन्दो के गायब हो जाने की चोट से विनोदसिंह सुन्न रह गया। नन्दो का वियोग था परन्तु उससे अधिक था, स्त्री के भाग जाने का अपमान। क्रोध से उस का मस्तिष्क फट जाना चाहता था। उस के घर से भाग जाने का विचार यदि मालूम हो जाता तो स्त्री भाग जाने के कलंक के बजाय वह उसे कत्ल करने का अपराध ही अपने सिर लेता। ऐसी पापिन, दुष्टा को वह भला प्रेम कर सकता था।

दिन बीतते गये। नन्दो के वियोग में दिन, सप्ताह और मास बीतते जाने पर, नन्दो से मिलने वाले सुख विनोदसिंह को याद आने लगे। रसोई मे जब आखो मे धुंआ भर जाने से आँसू टपकने लगते उसे नन्दो की याद आ जाती। चौमासे की गरमी में जब उमस से नींद न आ पाती तब याद आता,

इस समय नन्दो आहिस्ता-आहिस्ता पंखा डुला कर उसे सुला दे सकती थी। पांवों और बदन में एक टीस-सी उठने लगती जिसकी औषध नन्दो के हाथों के स्पर्श में थी ।

बदन पर फूली घाम को सहलाते सहलाते, नींद की प्रतीक्षा में विनोद-सिंह सोचने लगता—कुल्टा का कोई लच्छन तो उस में कभी दिखाई नहीं दिया ?·······तो वह चली कैसे गई ?·······क्या यहां अकेले घबरा गई ?···· ····दिल उसका उदास हो गया ?

किसी अप्रत्यक्ष युक्ति से नन्दो के प्रति क्रोध के बजाय करुणा और सहानुभूति की भावना उसके मन में उठने लगी। सोचने लगता···यदि एक दफे कहीं उसे देख पाता तो यत्न से बुला लाता और फिर कभी दुखी न होने देता। नींद न आने पर नन्दो के बिना, ऊँची मुंडेरों से घिरी छत उसे भयंकर जान पड़ने लगती। नींद में करवट बदलते समय कोई सहारा न पा नींद उचट जाती। उसका हृदय नन्दो के लिये रो उठता।

ज्यों-ज्यों समय बीतने लगा। नन्दो के विरह की तीव्रता बढ़ने लगी। उस के अभाव की निरंतर अनुभूति में नन्दो विनोदसिंह को देवी जान पड़ने लगी। वह उसका पुजारी बन दिन रात उसकी लौ लगाये रहने लगा। स्वप्न में वह देखता—नन्दो बनकी पगडन्डी और नदी तट पर बाल खोले सूनी आँखों से भटक रही है···जोगिन भेष बनाये, तन भस्म रमाई ।

सूना घर उसे काटने लगा। संध्या समय वह महाबीर जी के मन्दिर की आरती में जा बैठता और कीर्तन समाप्त होने तक वैराग्य के गीत गाता रहता। प्रातः उठ वह नदी स्नान करने चला जाता। नदी के गंदले, बरसाती जल में स्नान करने से उसे शान्ति लाभ होती। मन की शांति के लिये वह प्रवाह की ओर आंखें लगाये मुख से भगवान का नाम जपता रहता परन्तु आँखों के सामने लहरों पर उसे दिखाई देता—नन्दो का जोगन भेष धरे शांत रूप।

×　　　　　　×　　　　　　×

उस सावन की पूनो को नदी स्नान करने वालों की भीड़ अधिक थी। भीड़ से विनोदसिंह को क्या मतलब ? वह नीचे की ओर नदी किनारे अपने ध्यान में मग्न था। अचानक सुनाई पड़ा—"पकड़ो, अरे पकड़ो ! बह गई, बह गई !"

सामने ही विनोदसिंह को गोते खाती एक स्त्री दिखाई दी। नित्य तैरने के अभ्यास के कारण उसने आसानी से स्त्री को जा पकड़ा। स्त्री स्वयम तैरने का यत्न कर रही थी परन्तु नदी के तेज बरसाती प्रवाह में बेबस हो गई थी। सिर के भीगे केशों ने मुख पर लिपट कर उसे अंधा बना, घबरा दिया था। आसरा पा वह सम्भल गई। सहारे के लिये अपना एक हाथ उसने बचाने वाले के कंधे पर रख दिया। वे किनारे की ओर मुड़ने लगे। स्त्री ने दूसरे हाथ से अपने मुख पर फैले बालों को हटाया। उसकी दृष्टि बचाने वाले के मुख पर पड़ी। दोनों की आँखें चार हुई।

भय से आर्त एक चिल्लाहट स्त्री के मुख से निकल गई।

प्राण बचाने वाले का सहारा छोड़, पूरी शक्ति से वह नदी की तेज धार की ओर लपक चली। विनोदसिंह बेबसी मे पुकार उठा—"नन्दो!"

परन्तु नन्दो हाथ से निकल चुकी थी। गंदले तीव्र प्रवाह मे उसके लहराते केशों की एक झलक दिखाई देकर समाप्त हो गई। लहरें उसे निगल गईं।

क्रुद्ध, असफल हिंसक पशु की तरह लाल आँखों से विनोदसिंह नदी की उमड़ती धार की ओर देख रहा था। प्राण देकर उसे अपमान की चोट लगा जाने वाली के प्रति उसका मन आत्मग्लानि से जला जा रहा था—अविश्वसनीय, छलिया नारी! वह कभी किसी की हुई है?

चार आने

बिन्दौर के राजा साहब को खेलों से विशेष शौक था। दूसरे तालुकेदारो और बडे बडे आई० सी० एस० अफसरों की देखा-देखी वे अपने सेक्रेटरी के साथ जीमखाने का टेनिस टूर्नामेण्ट देखने गये थे। खेल की पैतराबाजी मे बड़े-बडे अफसरों और रईस लोगो के चेहरे प्रसन्नता से चमकते देख, उन लोगों के मुख से निरन्तर वाह-वाह सुन, राजा साहब को भी खेल से दिल-चस्पी होने लगी।

सेक्रेटरी के कहने से राजा साहब ने इकहरे (singles) खेल के मुख्य विजयी के लिये ट्राफी (विजयपात्र) की घोषणा कर दी। खेल समाप्त होने पर दूसरे बड़े आदमियो की तरह उन्होने भी खिलाड़ियो से हाथ मिलाया। राजा साहब को सन्तोष अनुभव हुआ, एक उचित काम किया गया।

तीसरे दिन सेक्रेटरी साहब ने राजा साहब को अंगरेजी का अखबार लाकर दिखाया। उस में राजा साहब का चित्र था। चित्र मे वे टेनिस के इकहरे खेल के विजयी खिलाड़ो मिस्टर इर्शाद से हाथ मिला रहे थे। समाचार पत्र के दो कालमों में, राजा साहब की क़द्रदानी और उदारता की प्रशंसा के साथ खिलाड़ी को विजयपात्र देने का समाचार छपा था। तब से टेनिस के खेल के प्रति राजा साहब के अनुराग की सीमा नहीं रही।

टेनिस के खेल सम्बन्धी अंग्रेजी शब्द निरन्तर उनकी जिह्वा पर रहते। टेनिस के बल्लो (रैकेटो) के वज़न और गेंद बनाने वाली कम्पनियों के

नाम उन्हे याद हो गये। किसी भी समाचार-पत्र में, किसी भी स्थान पर टेनिस-मैच का समाचार प्रकाशित होने पर वे उसे पढ़ते या पढ़ाकर सुन लेते। सफ़र मे आधा दर्जन बढ़िया टेनिस रैकेट उन के साथ रहते। मसूरी में रहते समय खिलाड़ियों का धारीदार कोट अपने स्थूल, शिथिल शरीर पर कसे वे प्रत्येक सन्ध्या छः आदमियों से ढकेली जाती रिक्शा पर सवार हो, टेनिस के मैच में पहुँच जाते। वे टेनिस के संरक्षक समझे जाने लगे।

इर्शाद हुसैन के लिये जीवन की सब से मूल्यवान् और प्रिय वस्तु थी उस का टेनिस का रैकेट। ऊँची कीमत का वह रैकेट इर्शाद को कॉलेज-टूर्नामेण्ट मे विजयी होने के पुरस्कार मे मिला था। इस रैकेट की बदौलत सम्मानित समाज के बड़े-से-बड़े महारथियों तक उसकी पहुँच हो पाती थी। बड़े-से बड़े आई० सी० एस० अफसर, सर और तालुक़ेदार मुस्कराकर उस से हाथ मिलाते। यूनिवर्सिटी की परीक्षाओं में कोई चमत्कार न दिखा सकने पर भी उसका आदर और महत्व था। उसके अपने घर में समृद्धि न होने पर भी समृद्ध लोग उसे आदर की दृष्टि से देखते। जस्टिस विकसन ने उससे हाथ मिलाया तो कलक्टर साहब ने भी शेक-हैण्ड किया। राजा साहब बिन्दौर ने उसे 'कार्लटन' होटल में चाय पीने के लिये निमंत्रित किया तो बिल्लूर के नवाब साहब ने भी उसे 'रायल' मे बुलाया।

टेनिस के ज़ोर पर समाज मे सम्मान पाकर भी इर्शाद हुसैन के जीवन की समस्या हल न हुई। वह घर में बड़ा लड़का था। घर के बोझ को सिर लिये बिना चारा न था। इर्शाद के पिता के समय प्रश्न था, घर और ख़ान्दान की इज्जत की रक्षा का। नवाबों के समय के जीवन-साधन अब न रहे थे परन्तु खान्दान की इज़्ज़त चली आती थी। इर्शाद के पिता, मियां शहनशाह हुसैन, जजी में पेशकार थे। इस नौकरी से उन्होंने घर को बहुत सम्भाला। भाइयों को तालीम दी, घर का मकान कुर्क होने से बचाया। इर्शाद हुसैन के तीनों चाचा घर का क़र्ज़ और इज्जत बड़े भाई के सिर ओढ़ा, एक के बाद एक अलग जा बसे। मियां शहनशाह हुसैन को इर्शाद हुसैन से बड़ी-बड़ी उम्मीदें थी परन्तु उन उम्मीदों के पूरी होने से पहले ही अल्ला-ताला ने उसे अपने पास बुला लिया।

कहावत है—शेर भूखा मर जाता है, घास नही खाता। वैसे ही खान्दान

शरीफ इन्सान भूखा रहकर भी समाज में अपना सिर नीचा नहीं होने देता। मियां शहनशाह हुसैन की मृत्यु के बाद घर के भीतर सैंकड़ों मुसीबतें सहकर भी इर्शाद और उनके छोटे भाइयों की तालीम जारी रही। घर की औरतों के बाहर निकलने का काम न था। कभी वे घर से निकलतीं तो पर्दे में। टाँगा बिल्कुल ड्योढी से सटाकर खड़ा किया जाता। दूधिया सफ़ेद चादरें टाग के आगे-पीछे तन जातीं। बैठक में कभी मेहमानों के आने पर बेगम साहिबा चादी की कामदार तश्तरी में पान और खुशबूदार तम्बाकू भेजना न भूलतीं।

कुंजड़े घर की ड्योढी पर आवाज लगाते तो भीतर से कहला दिया जाता—भई, सब्जी बाजार से आ गई है। मछली वाली को उत्तर मिलता—गोश्त ले लिया गया। कसाई आवाज लगाता तो उसे उत्तर मिलता—मछली ले ली गई। फेरी बेकार होने पर इन लोगों ने पुकार लगाना छोड़ दिया। पान-ढोली वाले की फेरी बन्द न हुई। उधार के लिये झंझट होती थी परन्तु घर में पान का खर्च बन्द न हो सकता था।

मियाँ शहनशाह हुसैन पर वर्षों से लाला महादेवप्रसाद का तीन हज़ार का कर्ज़ था। मियाँ साल-छः महीने में सूद की रकम किसी न किसी तरह अदा कर ही देते थे। उम्मीद थी, लड़के के बरसिरे रोज़गार हो जाने पर कर्ज़ अदा कर देंगे और अपने पुश्तैनी मकान को नये सिरे से बनवायेंगे। मियाँ शहनशाह हुसैन की मृत्यु के बाद सूद की रक़म मूल में मिलने लगी। चतुर लालाजी ने पिता के कर्ज़ के कागज इर्शाद हुसैन के नाम बदलवा लिये। सूद का दर कम कर देने के लिये मकान गिरवी हो गया। लालाजी स्वर्गीय मियाँ शहनशाह हुसैन की स्मृति का ख्याल कर, उनके बेटे से ७००) सालाना सूद के बजाय मकान के किराये के रूप में ६००) रुपया लेने लग गये।

पुश्तैनी मकान हाथ से निकल जाने का दर्द इर्शाद और उनकी वाल्दा दोनों को ही कम न था लेकिन सूदख़ोर महाजन से मुक़द्दमे-बाज़ी कर कचहरी जाने की बेइज़्जती कैसे बर्दाश्त की जाती। मकान के हिस्से में बसने वाले किरायेदारों से मिलने वाले किराये और महादेवप्रसाद को दिये जाने वाले किराये के अंतर से ही, किसी तरह ढक-ओढ कर, शरीफ खानदान का गुज़ारा चलता था। ज़ाहिरा हवेली उन की ही थी। लाला महादेवप्रसाद शरीफ इन्सान ठहरे। उन्होंने वायदा कर लिया था, पाँच-छः बरस, जब तक

इर्शाद बी० ए० पास कर कहीं नौकरी नहीं कर लेते, वे इस मामले में कुछ न बोलगे।

बी० ए० पास कर और टेनिस के मैदान में नाम कमा लेने पर भी अच्छी नौकरी पा सकने का मसला हल न हुआ। रोजगार के तौर पर सिवाय नौकरी के दूसरी राह न थी। मिस्टर इर्शाद की हवेली से उन की हैसियत जाँचने वाले लोग अकसर यह भी कह बैठते—"मियां, फिलहाल ज़माने मे नौकरी आसान नही और फिर नौकरी मे रखा ही क्या है? वही महीने में गिना-चुना रुपल्ला। कोई रोज़गार ही करो।"

इर्शाद को यूनिवर्सिटी की शिक्षा और टेनिस के खिलाड़ी के नाते बड़े आदमियो से दोस्ती और सम्मान का ख्याल कर दूसरे लोग सलाह देते—"वल्लाह, क्या बनिये-बक्काल का काम करोगे? तुम्हारे खानदान ने हमेशा हुकूमत की है। बड़े-बड़े अफ़सरान, हुक्मरान राजा-नव्वाबो तक तुम्हारी पहुँच है। डिप्टी कलक्टरी तुम्हारे लिये कौन बड़ी बात है?" इस सब आशावाद के बावजूद इर्शाद जानते थे, किसी भी अच्छी सरकारी नौकरी की राह मे कम्पीटीशन की कसौटियाँ हैं, जहां उम्मीदवारों को पहले और दूसरे डिवीजन की चलनियों मे छाना जाता है। सिफ़ारिश से बहुत कुछ हो सकता है परन्तु सिफ़ारिश की ड्योढ़ी तक पहुँचना भी तो आसान नही। यूं सेक्रेटेरियट को पचास-साठ की नौकरी के लिये किस की सिफारिश अथवा खुशामद करें, तो उसमे अपनी हेठी।

सोच-सोच कर मिस्टर इर्शाद ने निश्चय किया—उनके लिये नौकरी की गुञ्जाइश सरकारी महकमो में नहीं, राजा-रजवाड़ो मे ही हो सकती है। जहाँ केवल परीक्षा का ही नहीं, गुण का भी मूल्य हो। बार-बार उन्हे बिल्लूर के नवाब साहब और बिन्दोर के राजा साहब का ख्याल आ जाता। अन्तरंग मित्रो ने समझाया भी—जब वाक़फ़ियत है तो उस से फायदा न उठाने का मतलब क्या? ऐसे लोगो के यहाँ बीसियो मैनेजर और सेक्रेटरी पड़े रहते हैं। बीसियो दूसरी रियासतो और रजवाड़ो में ऐसे लोगो की रिश्तेदारियाँ और लिहाज़ रहते हैं। उन्हे ख्याल हो जाय तो तीन-चार सौ रुपया माहवार कौन बड़ी बात है? लेकिन, बड़े आदमी भी इन्सान का ख्याल उसकी हैसियत से ही करते हैं।

मिस्टर इर्शाद को मालूम था राजा साहब बिन्दौर मसूरी में हैं। अख़बारों के खेल समाचार के कालमों में उन का नाम छपता रहता था। साहस कर इर्शाद ने एक पत्र अंग्रेज़ी में टाइप कर राजा साहब को भेजा—शायद किसी काम से उन्हें मसूरी जाना पड़े। यदि ऐसा हुआ तो वह राजा साहब के दर्शन अवश्य करेंगे। बहुत जल्द ही राजा साहब का उत्तर आया—इर्शाद साहब अवश्य मसूरी तशरीफ़ लायें और राजा साहब के मेहमान बनें।

× × ×

मित्रों ने इर्शाद को समझाया—जीवन में ऐसे अवसर कम आते हैं ऐसे अवसर पर चूकना मूर्खता है। मिस्टर इर्शाद ने कुछ कर्ज़ लिया। दो नई पतलूनें और कमीज़ बनवायीं। टेनिस के धारीदार कोट और पतलून पर सफ़ाई और इस्त्री करवायी और रैकेट पर वार्निश। एक मित्र से सूटकेस उधार लिया। लखनऊ से मसूरी तक थर्डक्लास का किराया था लगभग आठ रुपये। सफर थर्डक्लास में भी हो सकता था परन्तु मसूरी हैसियत बरक़रार रखना ज़रूरी था। अधिक से अधिक जितना भी हो सका पूरे साठ रुपये जेब में डाल इर्शाद घर से चल पड़े।

मसूरी में मोटर के अड्डे सनीव्यू पर मोटर से उतर इर्शाद सूटकेस और बिस्तर कुली के सिर पर उठवा राह पूछते राजा साहब बिन्दौर की कोठी पहुंच सकते थे। परन्तु राजा साहब बिन्दौर का नाम सुनते ही कोठी पर पहुंचा देने के लिये आतुर रिक्शा कुलियों ने इर्शाद को घेर लिया। औचित्य और सम्मान का ख्याल कर इर्शाद रिक्शा पर लद कर चले और कुली उन का असबाब लेकर पीछे पीछे।

कोठी पर राजा साहब ने तपाक से इर्शाद का स्वागत किया। उन्हें बरामदे में कुर्सी पर बैठा उपस्थित सज्जनों से परिचय कराया। राजा साहब बिन्दौर ने इर्शाद की प्रशंसा में कहा—नव्वाब साहब टेनिस ऐसी खेलते हैं कि इनके सामने रैकेट हाथ में लेने की मजाल लखनऊ में तो कोई क्या करेगा!

इर्शाद साहब को ढोकर लाने वाले रिक्शा कुली एक ओर खड़े अपनी ओर दृष्टि पड़ने की प्रतीक्षा कर रहे थे। इर्शाद के मन में निरन्तर जेब से पैसे निकाल कर देने का ध्यान था परन्तु उस परिस्थिति में इस बात को इतना महत्व देना उचित न जंचा। राजा साहब का ध्यान दूसरी ओर होने पर

इर्शाद उठे। जेब से पाँच रुपये का नोट निकाल एक कारिन्दे को थमाते हुये उ ोने कहा— इन कुलियों को पैसे दे दिये जायें। वे देखते हैं कि नोट कुलियों क पास पहुंच गया। बोझ उठाने वाले कुली ने भी आगे बढ़कर सलाम किया। कुली माथा छूकर अब भी कह रहे थे— राजा लोग क यहाँ से बख़शीश। —कारि दे ने कुछ और सुनने से इन्कार करने क स्वर में कह दिया बस ठीक है जाओ बाट लो। उस नोट से कुछ बचकर जेब में वापिस लौटने की आशा इर्शाद को थी परन्तु वह उम पी गये।

इर्शाद साहब के लिये अलग कमरा ठीक हो गया। व राजा साहब के साथ मेज़ पर खाना खाते चाय पीते बढ़िया से बढ़िया सिगरेटों के डिब्बे हर समय सम्मुख खुले रहते। विशेष अभ्यास न होने पर भी वे देखा देखी सिगरेट लगा लेते। राजा साहब के साथ उनकी रिक्शा भी चलती। टेनिस कोर्ट म उन्होने अपने हाथ दिखाये। राजा साहब अपने मित्रों से उनका परिचय कराते और नव्वाब साहब कहकर सम्बोधन करते।

इर्शाद राजा साहब के साथ हैक्मैन सवाय और शार्लेविली की पार्टियों और नाचों में जाते। प्रतिदिन सैकड़ों रुपया पार्टी डांस और ड्रिंक की सूरत म बहता नज़र आता। इस समृद्धि म इर्शाद के लिये तीन-चार सौ निकल आना कौन बड़ी बात थी? प्रश्न था केवल उस ओर यान जाने भर का। समृद्धि के अनुपात से जो जितना समृद्ध समझा जाता है उसका उतना ही अधिक सम्मान होता है उतने ही अधिक रुपये उस के लिये बहाये जाते हैं। इस परिस्थिति में रुपये की कमी और ग़रीबी की चर्चा करने का साहस इर्शाद साहब के लिए सम्भव न था। किसी समय एकान्त देख वे इस सम्ब ध में राजा साहब से बात करने का विचार करते रहे परन्तु वह समय न आया। और जब कभी कुछ मिनिट के लिए एकान्त मिला भी तो असमृद्ध पहचाने जाकर सम्मान खो देने के भय ने गले को जैसे अवरुद्ध सा कर दिया।

इर्शाद ने मन को समझाया वह भीख नहीं मागना चाहता। वह काम और मेहनत करने के लिए तयार है परन्तु आंख निरन्तर देख रही थीं— आदर सम्मान काम और मेहनत का नहीं बल्कि काम और मेहनत करने की आवश्यकता न होने का ही है। रुपये का सम्मान अवश्य है परन्तु रुपया पद करने वाले श्रम का निरादर ही है। एक सप्ताह तक अवसर से किसी भी

प्रकार लाभ उठा स ने में अपने को असमर्थ पा इर्शाद साहब ने राजासाहब से लखनऊ लौट जाने की इजाजत च ही।

राजा साहब ने आग्रह किया— अभी दो चार रोज़ और ठहरिये '

राजा साहब की इच्छा के अनुकूल क टरी साहब ने सुझाया— न वाब साहब ट ना म भीड़ का क्या हाल है श यद ख्याल नहीं हा ? तीन दिन से कम नाटिस पर तो सीट रिजर्व हा ही नहीं सकती !

सीट रिजर्व होने या न हो सकने के प्रश्न की उपेक्षा के भाव से इर्शाद साहब ने उत्तर दिया— वाह ऐसी कौन बात है ?

उस उपेक्षा की चि ता न क अपनी उपयोगिता दिखाने के लिए टली फोन की ओर बढ़ते हुए सेक्रेटरी साहब ने राजा साहब को सम्बोधन किया— हुजू न वाब साहब के लिए किस तारीख के लिए सीट रिजर्व करा दी जाय ? आज पाँच है।

इर्शाद साहब की ओर देख राजा साहब ने फर्माया— ऐसी क्या जल्दी है दा रोज तो और ठहरिये। छ और सात को रहिए। हाँ आठ के लिए करा दो।

सेक्र टरी साहब ने मसू ी में रेल के दफ्तर को फान किया। उत्तर मिला सीट पूरे सप्ताह के लिए रिजर्व हो चुकी हैं। सेक्र टरी के इस उत्त से इर्शाद साहब को सान्त्वना हुई थी। प तु क्र ट ी साहब यों पराजय स्वीकार करने के लिए तय र न थे। दुबारा फान किया और जरा उचे स्वर में बोले— सुनिए हम ाजा साहब चि दौर के यहाँ से बोल रहे हैं। राजा साहब फर्माते हैं एक सीट की जरूरत है न वाब इर्शाद हुसैन साहब के लिए आठ तारीख को हावड़ा एक्सप्रेस में लखनऊ तक।

अब की बार उत्तर भिन्न था। मुस्कराकर सेक्रटरी साहब ने फर्माया— हुजू को सलाम बोल रहे हैं और कहते हैं टिकिट अलग रख लिया है। आदमी भेज कर मंगा लीजिए। —टिकिट की कीमत भी उन्होंने बता दी इकतालिस रुपये आठ आने।

इर्शाद साहब का चेहरा पीला पड़ जाना चाहता था। हृदय की सम्पूर्ण शक्ति और साहस से उन्होंने चेहरे के भाव को सम्भाला। उनके लिए राजा

साहब की म फत सीट रिजर्व हो चुकी ी टिकट खरीद लिया गया था। बयालिस रुपये तु त जेब से न निकाल देने का अर्थ होता अपने आप को उस सब स म न के लिए अनाधिका ी प्रमाणित क ना जो ऊंचे दर्जे में सफर करने वाले राजा साहब के अतिथि के रूप में उनका दिया जा रहा था।

इर्शाद ाहब के मसू ी मे चलने के दिन राजा साहब ने दोपहर को एक अ छी खासी विदाई की दावत [फय वेल ंच] टेनिस के खिलाड़ियों को दे डाली। नए खिल ड़ियों से परिचय प्रा न करने का ाजा साहब के लिए यह अच्छा अवसर था। दोपहर की दावत के बाद तीन बजे नीचे ज ने वाली मोटर से उ हें विदा करने के लिए सेक्रे ी साहब रिक्शा में लनी यू तक आये। पहले से फोन कर उनके लिए टैक्सी में सीट रिजर्व की जा चुकी थी।

एक रुपय दे कर मो र लारी में चुपच प नीचे चले जाने के बजाय कार की आराम देह पिछली गद्दी पर ैठ कर जाना इर्शाद का सूलों की सेज जान पड़ रहा था। जेब मे शव रह गये केवल च र रुपये इसके लिए पर्याप्त ी होंगे या नहीं? यदि सक्र ी साहब लनी यू तक सा न आते तो गले पर यह आखिरी छुरी क्यों फि ती? पर तु उनक साथ न आने का अथ होता इर्शाद के स पूर्ण सर ार का विद्रूप म परिणत हो जाना? राजा साहब की कोठी से चलते समय नौकरों ने एक पंक्ति ं खड़ा होकर सलाम किया। इस सलाम का अथ वह समझ न हो सो बात नहीं; पर तु हृदय पर पड़ती भालों की इस चोट को वह अपने असाम य से आँखें फिरा हाठ काटकर सह गया।

इतनी बड़ी हैसियत के मुसाफिर से किराए का तकाजा करना मोटर कम्पनी के एजेंट के लिए उचित न था। उसने विनय से रसीद सेक्रे री साहब की माफत न वाब साहब के हाथ में पहुँचा दी। रसीद की ओर नजर डाले बिना सेक्र टरी ने उसे नव्वाब साहब क हाथ में दे दिया। नव्वाब साहब ने भी प्रकट उपेक्षा स उसे पतलून की जेब मे खोंस लिया।

कार के चल पड़ने पर उस रसीद की उपेक्षा सम्भव न थी। इर्शाद ने रसीद निकाली और देखा—तीन रुपये आठ आने। फिर यान से देखा और भाग्य के स मुख सिर झुका एक दीर्घ निश्वास ले वह सीने पर बाहें बांध सीट से पीठ टिका बैठ गया। तेज़ चाल से फिसलती जाती कार की आरामदेह गद्दी पर बैठ उसकी कल्पना अनुभव कर रही थी—एक कठोर अग्नि परीक्षा

म पूरा उतर कर वह सुरक्षित चला आ रहा है। राजा साहब की कोठी म बिताये दस दिन का उसके जीवन से भिन्न एक अस्तित्व था। दस दिन के इस जीवन का कोई आगा पीछा न होने पर भी उसमे एक सन्तोष था। जैसे तैसे उसने उसे निभा दिया।

और जब देहरादून स्टेशन पर पहुँच ड्राइवर ने गाड़ी का पिछला दरवाजा खोल सलाम किया, इर्शाद सम्भ्रम सहित उठ गाड़ी के बाहर आया। जेब में शेष रुपये रुपय के चार नोट उसने ड्राइवर की ओर बढ़ा दिये। इर्शाद स पहले उतरने वाले अंग्रेज साहब पाच रुपये का नोट ड्राइवर को दे, धन्यवाद के सलाम की प्रतीक्षा न कर सीधे स्टेशन की ड्योढी में चले गये थे। ड्राइवर ने झुक कर जो सलाम नव्वाब साहब को किया वह निश्चय ही आठ आने से अधिक मूल्य का था और जब ड्राइवर ने चारों नोट जेब मे रख लिये तब उपाय ही क्या था ?

कार म सफर करने वाले मुसाफिर स आदेश की प्रतीक्षा किये बिना कुली इर्शाद का हल्का असबाब उठा स्टेशन के भीतर चल दिया। गाड़ी अभी प्लेटफार्म पर लगी न थी। सामान पहले दर्जे के मुसाफिरा के लिये विश्राम करने के कमरे म रख दिया गया।

अंग्रेज मुसाफिर गुसलखाने में चला गया था। इर्शाद पखे के नीचे आराम कुर्सी पर सिर को दानो हाथा स थाम बैठ गया। वह परेशान था, गाड़ी में असबाब रखने के बाद कुली को कम से कम चार आने पैसे देने ही होंगे और इर्शाद की जेब मे भाग्य से एक भी पैसा शेष न था। इन चार आने पैसों के अभाव में नव्वाबी क सम्पूर्ण अभिनय की इमारत ढह कर गिर जाना चाहती थी। इर्शाद ने किसी चमत्कार की आशा में सभी जेबा में हाथ डाले परन्तु जो था नही वह कहा से निकल आता ?

सहसा मस्तिष्क में एक विचार सूझा। अधमु दी आखों से अपन विचार की उधेड़बुन म वह कितनी ही देर बैठ रहा। रिफ्रेशमेण्टरूम का बैरा चाय के लिये पूछने आया। उसे इर्शाद ने सिर हिला इन्कार कर दिया। गाड़ी के प्लेटफार्म पर आते ही वह गुसलखाने में चला गया।

आधा घण्टा पैंतालिस पचास मिनिट पूरा एक घण्टा गुजर गया। कुली बार बार झाक कर देख रहा था। गाड़ी ने सीटी दे दी, गार्ड साहब न

सीटी बजा* हरी झण्डी दिखाई गा ी चल दी। लेकिन साहब गुसलखाने से निकले नहीं। जब साहब गुसलखाने से निकले गाड़ी छूट चुकी थी।

इर्शाद ने परेशानी के भाव में पूछा—क्या गाड़ी छूट गई ? कुली और वेंटिंगरूम के बैरे ने सिर झुका कर उत्तर दिया— हुज़ूर !

इर्शाद ने टिकट चेकर बाबू के समीप जाकर शिकायत की—उसके गुसल करते समय ही गाड़ी छूट गई।

उत्तर मिला— अब आप देहली एक्सप्रस मे मु ादाबाद जाकर लाहौर हावड़ा मेल पकड़ सकते हैं। लेकिन सी उम म रिजव हाना मुश्किल है। मुरादाबा में गाड़ी की प्रतीक्षा की असुवि ा को असह्य बता इर्शाद ने कहा अब आज नहीं वह कल सीधा लखनऊ की गाड़ी से ही जायगा और उसका फस्टक्लास का टिक वापिस कर लिया जाय।

इर्शाद के उसी टिक मे आज के बजाय कल सफर करने में टिकट बाबू को कोई एतराज न था। टिकट वापिस भी हो सकता था पर तु वह मसू ी में खरीदा जाने के कारण देहरा ून में नहीं उसके लिये लखनऊ म ट फिक सुपरिंटेण्डेण्ट के दफ़्तर में टिकट भेज कर पत्र लिखा जाना जरूरी था।

इतने गहरे विचार से चली गई चाल उल्टी पड़ जाने से इर्शाद के पांव तले से धरती खिसक गई। वह फिर आराम कुर्सी प जा पड़ा। वेटिंग रूम के बाहर खड़ा कुली प्रतीक्षा कर रहा था और इर्शाद वह कुली के चार आने मांग सकने के अधिकार के सम्मुख असमथ था। सब कुछ सह कर भी नव्वाबी की शानदार मेहराब से कुली की ईंट खिसकी जा रही थी—केवल चार आने के रूप में।

चूक गयी

यदि मैं आप से पूछूं —पागल किसे कहते हैं ? आप क्या उत्तर देंगे ?

आप कहेंगे— जिस शख्श का दिमाग ठीक न हो जो बहकी बहकी बात या बेहूदा हरकत करे वह पागल है। जवाब ठीक है लेकिन सवाल हो सकता है दिमाग की सही हालत क्या है ? इस बारे में पागल समझे जाने वाले इन्सान की राय का भी कोई मूल्य है या नहीं ? किन बातों को बहकी हुई और किन हरकतों को बेहूदा समझ लिया जाय ?

मेरा ख्याल है सभी किस्म की बात और हरकत हम सभी लोग किसी न किसी वक्त करते हैं। केवल समय और स्थान के लिहाज से कुछ बातें बहकी हुई और हरकतें बेहूदा हो जाती हैं। पागल वे ही सब काम और बात करते हैं जो हम और आप करते हैं। उन्हें केवल समय और स्थान का ध्यान नहीं रहता। उनके दिमाग में समझ का कांटा गलत लाइन पर बदल जाता है और उनकी ज़िन्दगी की रेलगाड़ी पूरी रफ्तार से दौड़कर समाज के विश्वास और निश्चय की मजबूत पुस्तियों से टकराकर चूर-चूर हो जाती है। हमारा समाज अपने विश्वास की दृढ़ता के अभिमान में तिरस्कार भरी करुणा की क्षणिक मुस्कान से कह देता है—पागल ! बिलकुल सही और सीधी लाइन चलती आबिरा की सुन्दर जीवनी के साथ भी यही हुआ।

मेजर पालित के साथ मैं पागलखाना देखने गया और आबिरा को देखा। मेजर ने बिलकुल तटस्थ भाव से कहा— इसका पागलपन यही है कि यों तो

जो कुछ यह करना चाहती है वह बिलकुल सही और मुनासिब है । लेकिन यह सब इसे इस समय कहना और करना नहीं चाहिए क्योंकि इसका वक्त निकल गया है। इसकी जिन्दगी की गाड़ी फुल स्टीम अहेड (पूरी रफ्तार से) जाना चाहती है लेकिन उसका वक्त निकल गया है इसलिये इसे किसी स्टेशन पर सिगनल नहीं मिल सकता। हमारे समाज के विश्वास और रीति को यह अपनी रफ्तार की शक्ति से धक्का न दे यह किसी को कुचल न डाले इसलिये इसे यहाँ लाकर बन्द कर दिया गया है। यहा यह जीवन के शेष दिनों तक अपनी जिन्दगी की भाप को फुफकारों में समाप्त करती रहेगी और स्वयं भी समाप्त हो जायगी।

मेरा विश्वास है मनुष्य प्रकृति की अपेक्षा अधिक दूरदर्शी है। वह अपनी कला को सृष्टि चाहे वह प्रकृति की नक़ल भर ही क्यों न हो संगमरमर पीतल अष्टधात या मजबूत कनवस पर करता है। यह चीज़ें स्वयम् इन्सानी ज़िन्दगी की अपेक्षा कहीं चिरस्थायी होती हैं। प्रकृति अपने सौन्दर्य और कला का प्रदर्शन करती है कल्पना सी नाज़ुक फूलों की पंखुड़ियों में और रक्त मांस जसे क्षण भंगुर पदार्थों में। उन्हें देखकर या उनके खयाल से मनुष्य एक समय अवाक् रह जाता है सकते में आ जाता है परन्तु उनका अस्तित्व क्या है ? यह चमत्कार कितनी देर टिक पाते हैं ? एक इन्सान की छोटी सी ज़िन्दगी में ऐसे कितने ही कमाल आते हैं और चले जाते हैं।

आदिरा को मैंने देखा। उसके सिर पर उजली चांदी लहरें ले रही थी। ध्यान से देखने पर महीन झुर्रियों से छाये उस के चेहरे पर एक असाधारण सौन्दर्य का ढाँचा विद्यमान था। उसकी निगाह खोई-सी थीं लेकिन उन निगाहों का घर। वे आँखे वे क्या न रही होंगी ?

एक बीते हुए सौन्दर्य की रेखाएं मौजूद थीं परन्तु सौन्दर्य अदूरदर्शी प्रकृति का वह चमत्कार उड़ चुका था। रह गया था केवल सकेतमात्र जो कल्पना को सीमा रहित कर अपनी उड़ान भरने के लिये उत्तजित कर चुप रह जाता था। शायद ऐसे ही सौन्दर्य की कल्पना कर कवि बिहारी ने कहा होगा—भये न केते जगत के चतुर चितेरे चूर । यानि उस दिव्य सौन्दर्य की छवि उतारने के प्रयत्न में संसार के कितने चतुर चित्रकार और कलाकार हथियार नहीं डाल गये।

परन्तु उस सौन्दर्य के प्रति श्रद्धा से माथा नवा देने से पहले ही आदिरा का बुढ़ापे का शृङ्गार माथे की बिन्दी कानों के कर्णफूल गले का हार और सब से अधिक उसकी भूली भटकी निगाहों ने मन में एक आशङ्का जगा दी एक वितृष्णा पैदा कर दी। ठीक वैसे ही जैसे किसी सुन्दर चमकीले साँप की चपलता देख मन सिहर उठता है।

मेरे इस सौन्दर्य का कोई प्रयोजन है क्यों नहीं ? अवश्य है। आओ ! आओ न ! दोनों बाहु फैलाये सिनेमा की सफल नायिका की अदा से आदिरा ने कहा और आकाश की ओर दृष्टि उठाये वह एक ओर चल दी। उस की वह आयु और उसका वह द्रवित स्वर ! देख और सुन कर शरीर के रोंगटे खड़े हो गये। कहा जा सकता था वह किसी नाटक के अभिनय का रिहर्सल कर रही है या यही उसका पागलपन था।

यहाँ भीतर देखो ! —मेजर पालित ने आदिर की कोठरी के भीतर मेरा ध्यान दिलाया। दिवार पर एक अधूरा तैल चित्र लटका था। चित्रों का मुझे शौक है। काफी चित्र मैंने देखे हैं। यूरोप में ऐसे चित्र भी देखे हैं जिन्हें संसार की कला का प्रतिनिधि कहा जाता है। रोज़टी और राफेल के बनाये चित्र देखे हैं बोगन के देखे हैं। भारतीय चित्र कला तो अपने घर और अभिमान की चीज़ है ही परन्तु उस अधूरे चित्र को बहुत देर तक देखता रह गया।

यह इसी का चित्र है। —मेजर पालित ने कहा। चित्र की ओर से निगाह हटाये बिना आदिरा के चेहरे की लाइनों और अनुपात को याद करने लगा। दोनों में समानता थी। वैसे ही जैसे ताजमहल बनाने से पहले उस का नक्शा तयार कर लिया जाय और बाद में ताजमहल से उस नक्शे का मिलान किया जाय। आदिरा सिर्फ एक धुंधला नक्शा भर थी और वह चित्र ताज महल की अपनी सम्पूर्ण गरिमा लिये हुए।

उस चित्र की ओर से मैं निगाह हटा न सका और मेजर पालित कहते गये— यह आदिरा बम्बई के एक बहुत प्रतिष्ठित और सम्पन्न परिवार की लड़की है। कम उम्र में ही विधवा हो गई थी। माता पिता नये और उदार विचारों के लोग थे। उन्होंने इसे अपना जीवन नये सिरे से ढालने की पूरी स्वतंत्रता दी। इस में बचपन से प्रतिभा थी और प्रतिभा के साथ दृढ़ता भी।

इसने पढ़ने लिखने में मन लगाया था पर तु वह लिखना पढ़ना केवल मानसिक सतोष क प्रयोजन स था ।

'कहना पडेगा बद किस्मती से इसका परिचय एक बहुत नामी और सफल कलाकार से हो गया। कलाकार का नाम नहीं बता सकता। हम डाक्टर लोग गर्व से सिर ऊ चा किये रहने वाले कितने ही खानदानों के कच्चे चिट्ठे जानते हैं। कितनी बर्बाद और मासूम जि दगियों की आहों के राज़ हमारे दिलों म छिपे रहते हैं। उन्हें ज़बान पर लाना पेशे के इख़लाक के ख़िलाफ है। उस चित्रकार की कई चीज तुमने देखी होंगी तारीफ की होगी कुछ समय स ज़िक्र नहीं सुना होगा और अब शायद सुनोगे भी नहीं।

उस नामी चित्रकार से इस स्त्री का परिचय हो गया। ज्यों-ज्यों परिचय बढ़ता गया इस की श्रद्धा कलाकार पर बढ़ती गई। चित्रकार के मन में आदिरा के प्रति अनुराग उत्पन्न हुआ। उस अनुराग को केवल भावनामय आत्मिक प्रेम समझ संतोष पाने की आशा में आदिरा बढ़ती गई। चित्रकार की भावना क्रियात्मक रूप म आने लगी। आदिरा को यह मन्जूर न था परन्तु हृदय में चित्रकार क प्रति प्रम और श्रद्धा भी थी।

दोनों में एक सघष आर भ हुआ। कलाकार की ओर से पाने का और आदिरा की ओर से बचने का। चित्रकार आदिरा को सशरीर चाहता था और आदिरा केवल भावना के फूल उस के चरणों म अर्पण करती। दोनों में बहस होती। दोनों की अपनी दलील थीं। कई मास बीत गये।

अतृप्ति की आच से तप कर कलाकार निरुत्साह रहने लगा शिथिल होने लगा। उसकी सम्पूर्ण प्रतिभा आदिरा को जीत लेने के प्रयास में खर्च होने लगी। आदिरा दृढ़ रही क्यों कि यह उसका अपना विश्वास और निष्ठा थी।

चित्रकार का काम ब द हो गया। अब वह केवल आदिरा का चित्र बनाना चाहता था। आदिरा स उसका मिलना कम होने लगा। शब्दों स निराश हो उस ने आदिरा को रेखाओं म बाधने का यत्न आरम्भ किया। अपने आपको भूल जाने के लिये वह दिन रात आदिरा के चित्र में लगा रहता।

आदिरा के चेहरे का यह चित्र बना कलाकार ने चित्र दिखाने के लिये उसे अपने मकान पर बुलाया। चित्र का तयार भाग आदिरा को दिखा

चित्रकार ने कांपते हुए स्वर में कहा— मैं चाहता हू तुम्हारे सम्पूर्ण शरीर का जसे का तसा एक चित्र तैयार करना। स्वयम् वञ्चित रहकर भी प्रकृति के इस अनूठे वरदान की एक यथा त य स्मृ ति छोड़ जाना चाहता हू।

लज्जा और अपमान से आदिरा का चेहरा लाल हो गया। स्वेद कणों से सिक्त शरीर पर रोम खड़े हो गये। नेत्र झुकाकर उसने उत्तर दिया— यह कला की साधना नहीं वासना का प्रपञ्च है।

परास्त कलाकार खीझ उठा। आदिरा की आखों में आख गड़ा उसने प्रश्न से उत्तर दिया—तो फिर तुम्हारे इस नि प्रयोजन सौन्दर्य के अस्ति व का ही क्या उपयोग है ? वह कलाकार मार खाये हुए की भांति आत्म ग्लानि और लज्जा से अपना घर छोड़ कहीं चला गया और फिर लौटा नहीं।

अपने घर लौट आदिरा कलाकार और उसकी अन्तिम प्रतारणा की बात—तो फिर तु हारे इस नि प्रयोजन सौ दय के अस्तित्व का ही क्या उपयोग है ? सोचती रही।

उसे आशा थी सुबुद्धि होने पर कलाकार लौट आयगा पर वह लौटा नहीं। आदिरा स्वयम् विक्षिप्त रहने लगी और एक दिन चित्रकार के मकान पर जा उसके हाथों आरम्भ की गई अपनी वह तस्वीर उठा लाई। इस तस्वीर के सामने वह घण्टों बैठी रहती और स्वयम् ही बड़बड़ाने लगती— तुम्हारे इस निष्प्रयोजन सौन्दर्य के अस्तित्व का ही क्या उपयोग है ?

वह सोचती रही—यद्यपि कलाकार की कला उसकी वासना का ही रूप था परन्तु वह अपराध क्योंकर था ? और कलाकार की वासना स्वयम् उस के अपने जीवन की पुकार और अस्ति व की स्वीकृति ही तो थी मेरे लिये गव की वस्तु ही तो थी ?

'समय बीतता गया। समय की बहती हुई धारा अदृश्य रूप से आदिरा के लावण्य के कण बहाये लिये जा रही थी। निरतर चिंता से आदिरा सचेत होने लगी उपयोग में आ सकने की अपनी शक्ति के प्रति और उसके लिये बीते जाते अवसर के प्रति। वह अधीर होने लगी क्या कलाकार अब लौटेगा नहीं ?

जैसे ढलवान म आकर नदी का वेग बढ़ जाता है वह किनारों की काट अधिक तेजी से करती है वैसे ही ढलती आयु शरीर को तीव्रता से क्षीण करने लगती है। आदि। अधीरता से अनुभव करने लगी लावण्य का पुंज उस का शरीर क्षीण हुआ जा रहा है नि प्रयोजन । किसी भी उपयोग में आये बिना।

कलाकार के लिये आदिरा की प्रतीक्षा खोज में बदलने लगी। आदिरा उसे ढूंढने के लिये बदहवासी में घर से निकल पड़ी। उसकी यह बद हवासी सम्पन्न और स भ्रान्त परिवार के लिये बवाल बनने लगी। उस पर बन्धन लगाने की आवश्यकता हुई। बन्धन ने उसकी बदहवासी का भड़का दिया।

अब एक बरस से वह यहाँ है। वह चाहती क्या थी? चाहती क्या है? उस के नि प्रयोजन बीतते सौन्दर्य का अस्तित्व उपयोग में निकल आये! इस में ग़लती क्या है? केवल समय और परिस्थिति निकल गई है वह चूक गई।

× × ×

मेजर पालित चुप हो गये। चित्र की ओर से दृष्टि हटा मैंने शोक प्रकट किया— काश यह चित्र पूरा बन सकता! इसका पूरा न हो सकना मानव कला की संस्कृति के लिये कभी पूरी न हो सकने वाली हानि रह जायगी।

मेजर पालित अब भी तटस्थ थे। उन्होंने पूछा— और क्या यह नष्ट हो रहा जीवन फिर लौट आयगा!

सोचने लगा—एक मानव का जीवन कला की एक उत्कृष्ट कृति की अपूर्णता? कौन अपूर्णता अधिक चिन्तनीय है? जीवन की अपूर्णता में कला है कला से जीवन की पूर्णता है।—खैर जो भी हो आदिरा चूक गई!

आदमी का बच्चा

दोपहर तक डौली कन्वेयट (अंग्रेजी स्कूल) में रहती है। इसके बाद उस का समय प्राय आया थि दी के साथ कटता है। मामा दोपहर में लञ्च के लिये साहब की प्रतीक्षा करती है। साहब जल्दी म रहते हैं। ठीक एक बजकर सात मिनिट पर आये गुसलखाने में हाथ मु ह धोया इतने म मेज़ पर खाना आ जाता है। आधे घण्टे में खाना समाप्त कर सिगार सुलगा साहब कार में मिल लौट जाते हैं। लञ्च के समय डौली खाने के कमरे में नहीं आती अलग खाती है।

संध्या साढ पांच बजे साहब मिल से लौटते हैं तो बेफिक्र रहते हैं। उस समय वे डौली को अवश्य याद करते हैं। पांच सात मिनट उस से बात करते हैं और फिर मामा स बातचीत करते हुए देर तक चाय पर बठे रहते हैं। मामा दोपहर या तीसरे पहर कहीं बाहर जाती हैं तो ठीक पांच बजे लौटकर साहब के लिये कार मिल भेज देती हैं। डौली को बुला साहब के मुआयने के लिये तैयार कर लेती हैं। हाथ मु ह धुलवा कर डौली की सुनहलापन लिये काली क घड अलकों म वे अपने सामने कङ्घी करा ी हैं। स्कूल की वर्दी की काली सफ द फ्राक उतार कर दोपहर में जो मामूली फ्राक पहना दी जाती है उसे बदल नई बढ़िया फ्राक उसे पहनाई जाती है। बालों में रिबन बांधा जाता है। सण्डल के पालिश तक पर मामा की नज़र जाती है।

ब गा साहब मिल में चीफ़ इञ्जीनियर हैं। विलायत पास हैं। बारह सौ रुपया महीना पाते हैं। जीवन स सतुष्ट हैं पर तु अपने उत्तरदायित्व से भी

बेपरवाह नहीं। बस एक ही लड़की है डौली। डौली पांचवें वर्ष में है। उसके बाद कोई सन्तान नहीं हुई। एक ही सन्तान के प्रति अपना कर्तव्य पूरा कर सकने से साहब और मामा को पर्याप्त संतोष है। बग्गा साहब की नज़रों में सन्तान के प्रति उत्तरदायित्व का आदर्श ऊंचा है। डौली को बेटी या बेटा सब कुछ समझ कर संतोष किये हैं। यूनिवर्सिटी की शिक्षा तो वह पायेगी ही। इसके बाद शिक्षा क्रम पूरा करने के लिये उसका विलायत जाना भी आवश्यक और निश्चित है। सन्तान के प्रति शिक्षा के उत्तरदायित्व का यह आदर्श कितनी सन्ताना के प्रति पूरा किया जा सकता है? साहब कहते हैं—यों कीड़े मकोड़े की तरह पैदा करके क्या फायदा? मामा—मिसेज बग्गा भी हामी भरती हैं—और क्या?

डौली! डौली! डौली! मामा तीन दफ पुकार चुकी थीं। चौथी दफ उन्होंने आया को पुकारा। कोई उत्तर न पा वे खिसियाकर स्वयं बरामदे में निकल आईं। अभी उन्हें स्वयं भी कपड़े बदलने थे। देखा—बंगले के पिछवाड़े से जहां धोबी और माली के क्वार्टर हैं आया डौली को पकड़े लिये आ रही है। मामा ने देखा और धक से रह गईं। वे समझ गईं—डौली अवश्य माली के घर गई होगी। दो तीन दिन पहले मालिन के बच्चा हुआ था। उसे गोद में लेने के लिये डौली कितनी ही बार ज़िद कर चुकी थी। डौली के माली की कोठरी में जाने से मामा भयभीत थीं। धोबी के लड़के को पिछले ही सप्ताह खसरा निकला था।

लड़की उधर जाती तो उन बेहूदे बच्चों के साथ शहतूत के पेड़ के नीचे धूल में से उठा उठाकर शहतूत खाती। उन्हें भय था उन बच्चों के साथ डौली की आदत बिगड़ जाने का। आया इन सब अपराधों का उत्तरदायित्व अपने ऊपर अनुभव कर भयभीत थी। मेम साहब के सम्मुख उनकी बेटी की उच्छृङ्खलता से अपनी बेबसी दिखाने के लिये वह डौली से एक क़दम आगे उसकी बाँह थामे यों लिये आ रही थी जैसे स्वच्छन्दता से पत्ती चरने के लिये आतुर बकरी का जबरन कान पकड़ घर की ओर लाया जाता है।

मामा के कुछ कह सकने से पहले ही आया ने ऊंचे स्वर में सफ़ाई देना शुरू किया— हम ज़रा सैंडिल पर पालिश करे के तईं भीतर गयेन। हम से बोलीं कि हम गुसलखाने जायगे। इतने में हम बाहर निकल के देखें ता

माली के घर पहुंची हैं। हम को तो कुछ गिनती ही नहीं। हम समझाय तो उल्टे हम को मारती हैं । इस पेशाब दी के बावजूद आया को डांट पड़ी।

दिस इज वेरी निली! —मामा ने डोली को अंग्रेजी में फटकारा। अंग्रेज़ी के सभी शब्दों का अर्थ न समझ कर भी डोली अपना अपराध और उसके प्रति मामा की उद्विग्नता समझ गई।

तुरन्त साबुन से हाथ मुंह धुलाकर डोली के कपड़े बदले गये। चार बज कर बीस मिनट हो चुके थे इसलिये आया जल्दी जल्दी डोली का मोज़े और सैण्डल पहना रही थी और मामा स्वयं उसके सिर में कंघी कर उसकी लटों के पेचों को फीते से बाँध रही थी। स्नेह से बेबी की पलकों को सहलाते हुये उन्हें अचानक गर्दन पर कुछ दिखाई दिया—जूं! वज्रपात हो गया। निश्चय ही जूं माली और धोबी के बच्चों की संगत का परिणाम था। आया पर एक और डांट पड़ी और नोटिस दे दी गई कि यदि फिर डोली आवारा गन्दे बच्चों के साथ खेलती पाई गई तो वह बर्ख़ास्त कर दी जायगी।

बेटी की यह दुर्दशा देख मां का हृदय पिघल उठा। अंग्रेजी छोड़ वे द्रवित स्वर में अपनी ही बोली में बेटी को दुलार से समझाने लगीं— डोली तो हमारी प्यारी बेटी है बड़ी ही सुन्दर बड़ी ही लाड़ली बेटी। हम इस को सुन्दर सुन्दर कपड़े पहनाते हैं। डोली तू तो अंग्रेजों के बच्चों के साथ स्कूल जाती है न बस में बैठकर? ऐसे गन्दे बच्चों के साथ नहीं खेलते न?

मचल कर फ़र्श पर पांव पटक डोली ने कहा— मामा हमको माली का बच्चा ले दो। हम उसे प्यार करेंगे।

छी छी! —मामा ने समझाया वह तो कितना गन्दा बच्चा है! ऐसे गन्दे बच्चों के साथ खेलने से छी-छी वाले हो जाते हैं। इनके साथ खेलने से जुएं पड़ जाती हैं। वे कितने गन्दे हैं काले काले भुत्त! हमारी डोली कहीं काली है? आया डोली को खेलने के लिये मैनेजर साहब के यहाँ ले जाया करो। वहां यह रमन और योति के साथ खेल आया करेगी। इसे शाम को कम्पनी बाग ले जाना।

डोली ने माँ के गले में बाहें डाल विश्वास दिलाया कि अब वह कभी गन्दे और छोटे लोगों के काले बच्चों साथ नहीं खेलेगी। उस दिन चाय

पीते-पीते बग्गा साहब और मिसेज बग्गा में चर्चा होती रही कि बच्चे न जाने क्यों छोटे बच्चों से खेलना पसन्द करते हैं। एक बच्चे को ही ठीक से पाल सकना मुश्किल है। जाने कैसे लोग इतने बच्चों को पालते हैं। देखो तो माली को। कम्बख्त तीन बच्चे पहले हैं एक और हो गया।

× × ×

बग्गा साहब के यहां एक कुतिया विचित्र नस्ल की थी। कागज़ी बादाम का सा रङ्ग गर्दन और पूंछ पर रेशम के से मुलायम और लम्बे बाल सीना चौड़ा। बांहों की कोहनियां बाहर को निकली हुईं। पेट बिल्कुल पीठ से सटा हुआ। मुंह जैसे किसी चोट से पीछे को बैठ गया हो। आंखें गोल गोल जैसे ऊपर से रख दी गई हों। नये आने वालों की दृष्टि उस की ओर आकर्षित हुए बिना न रहती। यही कुतिया की उपयोगिता और विशेषता थी। ढाई सौ रुपया इसी शौक का मूल्य था।

कुतिया ने पिल्ले दिये। डोली के लिये यह महान उत्सव था। वह कुतिया के पिल्लों के पास से हटना ही न चाहती थी। उन चूहे जैसी मुंदी हुईं आँखों वाले पिल्लों को मांगने वालों की कमी न थी परन्तु किसे दें और किसे इनकार करें? यदि इस नस्ल को यों बांटने लगें तो फिर उस की क़द्र ही क्या रह जाय? कुतिया का मोल ढाई सौ रुपया उस के दूध के लिये तो होता नहीं।

साहब का कायदा था कुतिया पिल्ले देती तो उन्हें मेहतर से कह गरम पानी में गोता दे मरवा देते। इस दफे भी वे यही करना थे परन्तु डोली के कारण परेशान थे। आख़िर उस के स्कूल गये रहने पर बैरे ने मेहतर से काम करवा डाला।

स्कूल से लौट डोली ने पिल्लों की खोज शुरू की। आया ने कहा — पिल्ले मैनेजर साहब के यहां रमन को दिखाने के लिये भेजे हैं शाम को आ जायंगे। मामा ने कहा — बेबी पिल्ले सो रहे हैं। जब उठेंगे तो तुम उन से खेल लेना। डोली पिल्लों को खोजती ही फिरी। आखिर मेहतर से उसे मालूम हो गया कि वे गरम पानी में डुबोकर मार डाले गये।

डोली रो रोकर बेहाल हो रही थी। आया उसे पुचकारने के लिये गाड़ी में कम्पनी बाग ले गई। डोली बार बार पूछ रही थी— आया पिल्लों को गरम पानी म डुबोकर क्यों मार दिया ?

आया ने समझाया – डनी (कुतिया) इतने ब चों को दूध कैसे पिलाती ? वे भूख से चेऊ चेऊ कर रहे थे इसीलिये उन्हें मरवा दिया। दो दिन तक डनी के पिल्लों का मातम डनी और डोली ने मनाया फिर और लोगों की तरह वे भी उ ह भूल गई।

माली के नये बच्चे के रोने की क क आवाज आधी रात में दोपहर में सुबह शाम किसी भी समय आने लगती। मिसेज़ बग्गा को यह बहुत बुरा लगता। झल्लाकर वे कह बैठती— जाने इस बच्चे के गले का छेद कितना बड़ा है।

बच्चे की कें क उ हें और भी बुरी लगती जब डोली पूछने लगती – मामा माली का ब च्चा क्यों रो रहा है ?

बिन्दी समीप ही बैठी बोल उठी— रोयगा नहीं तो क्या माँ के दूध ही नहीं उतरता। मामा और बि दी को ध्यान नहीं था कि डोली उन की बात सुन रही है। डोली बोल उठी 'मामा तो माली के बच्चे को मेहतर से गरम पानी में डुबवा दो तो फिर नहीं रोयेगा।

बि दी ने हँसकर धोती का आँचल होठों पर रख लिया। मामा चौंक उठीं। डोली अपनी भोली सरल आँखों में समथन की आशा लिये उन की ओर देख रही थी। दिस इज़ वेरी सिली डोली कभी आदमी के बच्चे के लिये ऐसा कहा जाता है ! —मामा ने गम्भीरता से समझाया। परिस्थिति देख आया डोली को बाहर घुमाने ले गई।

तीसरे दिन संध्या समय डोली मैनेजर साहब के यहाँ रमन और ज्योति के साथ खेलकर लौट रही थी। बंगले के दरवाजे पर माली अपने नये बच्चे को कोरे कपड़ में लपेटे दोनों हाथों पर लिये बाहर जाता दिखाई दिया। उस के पीछे मालिन रोती चली आ रही थी।

आया ने डोली का हाथ थाम परछाई से एक ओर कर लिया। डोली ने पूछा— यह क्या है ? आया माली क्या ले जा रहा है ?

माली का छोटा बच्चा मर गया —धीमे से आया ने उत्तर दिया और डौली को बांह से थाम बंगले के भीतर ले चली।

डौली ने अपनी भोली नीली आख आया के मुख पर गड़ाकर पूछा— आया माली के बच्चे को गरम पानी म डुबो दिया ?

छि. डौली ऐसी बात नहीं कहते। —आया ने धमकाया आदमी के बच्चे को ऐसे थोड़े ही मारते हैं।

डौली का विस्मय शान्त न हुआ। दूर जाते माली की ओर देखने के लिये घूम कर उसने फिर पूछा— तो आदमी का बच्चा कसे मरता है ?

लड़की का ध्यान उस ओर से हटाने के लिये उसे बंगले के भीतर खींचते हुए आया ने उत्तर दिया— वह मर गया भूख से मर गया। चलो मामा बुला रही हैं।

डौली चुप न हुई। उसने फिर पूछा— आया हम भी भूख से मर जायगे ?

चुप रहो डौली —आया झु भला उठी ऐसी बात करोगी तो मामा से कह दगे।

परन्तु लड़की के चेहरे की सरलता से उस का मा का हृदय पिघल उठा। उसकी घु घराली लटों को हाथ से सहलाते हुए आया कहने लगी— बैरी की आख में राई नोन। हाय मेरी मिस साहब तुम ऐसे आदमी थोड़ी ही हो! भूख से मरते हैं कमीने आदमियों के बच्चे!

कहते कहते उसका गला रु ध गया। उसे अपना लल्लू याद आ गया दो बरस पहिले। तभी से तो वह साहब के यहां नौकरी कर रही थी।

पुलिस की दफा

पंजाब के स्कूलों में गरमी की छुट्टियां बरसात में होती हैं। गांव पहुँचने से पहले ही सब ओर गहरी हरियाली छायी रहती है। स्टेशन से कसबे तक पक्की और कच्ची सड़क के दोनों ओर खेतों में धान और मक्का घुटनों तक बढ़ आते हैं। सड़क किनारे गढ़ों में गदला जल ताल-तलैया के रूप में भर आता है।

ब'देगढ़ कागड़े के पहाड़ों की तराई में एक बहुत छोटा सा कसबा है। आस पास के पहाड़ी गांवों के लोग मक्का और धान बेच गुड़ नमक तेल तम्बाकू और कपड़ा आदि खरीद ले जाते हैं। पांच छः दूकानें बजाजों की हैं तीन चार सुनारों की। राधे पंसारी जनरल मर्चेंट और हकीम भी है। अजवायन जीरा लालटैन और किसानों के औजारों के लिये कच्चा लोहा तक बेचता है। कसबे म डाक्खाना थाना और प्रायमरी स्कूल भी हैं।

गांव भर में मैं ही अकेला व्यक्ति हू जिसने होशियारपुर और जाल धर जाकर बी ए की डिगरी हासिल की है और अब फगवाड़े के हाई स्कूल में मास्टर हू ।

मानसिक रूप से कूपमण्डूक नहीं। जानता हू यह संसार विशाल और विस्तृत है—रोचक और रहस्यमय है। स्कूल में लड़कों को भूगोल पढ़ाता हू। गरमियों के दो मास के अवकाश में स्वीडन जाकर मध्यरात्रि के सूर्य के दर्शन नहीं कर सकता वीनस की गलियों में गंडोला की सैर भी नहीं कर सकता परन्तु इस विस्तृत और विचित्र देश में भी बहुत कुछ है:—कराची, बम्बई

मद्रास और पुरी में समुद्र-तट हैं। उससे भी समीप पेशावर में खैबर का ऐतिहासिक दर्रा है और स्वर्ग की उपमा पाने वाला काश्मीर भी। मैं अभी तक सैकड़ों राजवंशों को निगल जाने वाली अपने देश की राजधानी दिल्ली भी नहीं देख पाया।

छुट्टियों के अन्त में प्रति वर्ष जब अपने सीमित संकुचित कसबे से उकता जाता हूं आने वाली छुट्टियों में काश्मीर जाकर शिकारों पर निशात शालीमार और मातण्ड की सैर करने का निश्चय करता हूं। पहलगांव गुलमर्ग कुक्कड़नाग वरीनाग सब मुझे याद हैं परन्तु आये साल छुट्टियों के एक सप्ताह पूर्व से ही चन्देगढ़ का आकर्षण प्रबल हो जाता है। विचार बदल जाते हैं। रग्घा हलवाई की धुएं से काली तवेयों और नरया से छाई दूकान गुलमर्ग की फूलों से भरी उपत्यकाओं और अधित्यकाओं से कहीं अधिक चित्रमय और मनमोहक बन जाती है। उस की दूकान के गुड़ के सेब और तेल के पकौड़े काश्मीर के बागों की चेरी बग्गूगोशे और सेबों से अधिक आकर्षक बन जाते हैं। राधे पनसारी का चूरण डा० साह के कार्मिनेटिव मिक्सचर से अधिक विश्वास योग्य जान पड़ने लगता है। मुरली सुनार अपने चाँदी के चश्मे को सूर्य से ४५ अंश पर सीधे मेरी प्रतीक्षा में चमकाता सुनाई पड़ता है—हाँ अब तो बम्बई और विलायत जाओगे ... टाट गन्दा करने को हमारी ही दूकान रह गयी थी? कल्पना में कादरसिंह अपने रंके गलमुच्छे संवार कर कहता सुनाई पड़ता—अब नहीं कहानी सुनोगे क्या? उसकी रहस्यमय कहानियाँ याद आने लगती हैं। फिर दादी इस वर्ष जिन्दा हैं अगले वर्ष का क्या ठिकाना? यह तो सृष्टि का क्रम है। बुजुर्गों की छत्रछाया सिर पर बनी है। पत्नी और एक वर्ष के बच्चे की याद की बात कहना ढीठपना है। *सब लोग जानते हैं—वे भी हैं पर व्यवहार ऐसा होना चाहिये मानो वे हैं ही नहीं।*

गाँव में मेरी एक स्थिति है और आदर भी है। वहाँ कोई मेरी उपेक्षा नहीं करता। जाते ही सब लोग आन्तरिकता और चिंता से स्वास्थ्य का हाल और दूसरी बातें पूछते हैं मानो वर्ष भर मेरे विछोह में वे कलपते रहे हैं। वर्ष भर स्कूल में लड़कों की सन्दिग्ध और शिकायत भरी हेडमास्टर की हुकूमत भरी और दूसरे सहयोगी मास्टरों की प्रतिद्वन्दिता भरी दृष्टियों से मन

इतना विषयग्य हो जाता है कि अपनी प्रतीक्षा में बिछी ब देगढ़ की आखों में जा कर विश्राम पाये बिना जीवन सम्भव नहीं जान पड़ता।

फिर वही सब बात द्दान लगती हैं जिनसे छुट्टिया समाप्त होने के पहले उकता जाता हू। मकान के निचले बरामदे में मोढे पर बैठे बठे पुरानी पाठ्य पुस्तकों को पढ़ते रहना कलमसिंह की खपरल की छाजन पर से पीपल के पत्तों को हिलते देखते रहना और उस से बहुत दूर ज्वालामुखी की पहाड़ियों की अस्पष्ट सी रेखा। गली म बरसात का कीचड़ फजल और महम्दे की चीनी बत्तखा के झुडों का एक दूसरे के पीछे गली के पूव से पश्चिम और पश्चिम से पूर्व दाने चुनके और गिलाज़त की खोज म धावे करना प नर मढ़ी गली म पहाड़ी गाँव से आने-जाने वाले खच्चरों का गुजरना।

स ध्या समय बिशन भड़भूजे के छप्पर से धुए के बादलों के साथ ताजे भुनते चने और मक्का की खीलों की सोंधी सोंधी ग ध। बिशन की भट्ठी के स मुख गली और आस पास के मुहल्ले के बच्चों का जमघट। उनकी महीन और तीखी आवाज—फत्तू नरायन मत्ती खिज रहीमा जि हें मैं प्रतिवर्ष बालिस्त बालिस्त भर बढ़ता देखता आया हू। फिर वही अदम्य आकषण ब देगढ़ खींच लाता है और फिर मैं उन से उकताने लगता हूँ।

× × ×

ब देगढ़ आये डढ़ सप्ताह गुजर गया। दोपहर को नींद के बाद जम्हा इया लेता नीचे बरामदे में मोढ पर आकर बैठा था कि पूर्व की ओर से गुरो छोटी सी पोटली कौख में दबाये दिखाई दी। जम्हाई स खुले जबड़ों को बस में कर पूछा— भाभी कब आ गइ ?

कलमसिंह पिछले वर्ष भरती होकर लाम पर चला गया था। हर महीने उस का मनीआर्डर घर आ जाता था। मनीआर्डर गुरा के नाम आता था। गुरो की सास इस बात से बहुत बिगड़ती। उन का कहना था—लड़के का ब्याह कर उसे खो दिया। काली चोटी वाली ने लड़के को जाने क्या कर दिया कि उसी का हो रहा। पेट से पैदा करने वाली माँ कुछ भी ना रही।

पिछले तीन महीने से कलमसिंह की कुछ खबर नहीं आ रही थी। माँ को स देह था बहू न रुपये भेजने और खत लिखने को मना कर दिया है।

बेटे के प्रति अपना क्रोध वह बहू पर झाड़ती। दुपट्टा गले में डाल वह गली किनारे की खिड़की के पास बैठ जाती और हाथ बढ़ाकर घंटों कोसती रहती। तूने यह किया तूने वह किया तूने उसे सिखा कर लाम पर भेज दिया। जल गया तेरा पेट जो मेरे बेटे की कमाई से नहीं भरा। तेरी कोख में पत्थर भरे हैं। तेरे माँ बाप ऐसे तेरे मायके वाले वसे ।

छुट्टियों में गाव आने पर सुना था परेशान हो गुरो अपने मायके सुरोवाल चली गई है। सहसा उसे सम्मुख देख पूछा—

क्या अकेले ही ? कुशल तो है ?

हाँ बीर! (भैया) वा लोग आने नहीं देते थे। भाई कहते थे रखड़ी (राखी) के बाद जाना। रखड़ी से पहले हम छोड़ने नहीं जायंगे। एक बहन है उसे सावन म कैसे घर स निकाल द। मेरा दिल नहीं माना। तीन महीने हो गये। लाम पर से तुम्हारे भाई को कोई खबर नहीं आयी। चिटठी तो इसी पते से आती है। सोचा क्या करु चिटठी आती है तो सास दबा लेती हैं। मेरा दिल नहीं माना। चलू देखू कोई खबर आयी हो। तुम कब आये ? इधर कोई चिटठी तो नहीं आयी ?

विश्वास दिलाया— नहीं इधर दस दिन के भीतर तो नहीं आयी — चिटठी आने पर कामसिंह की माँ मुझ ही स तो पढ़ा कर सुनती जब चिटठी आयेगी मैं तुम्हें ज़रूर खबर कर दूंगा।

पहाड़ का आँचल होने से बन्देगढ़ म वर्षा अधिक होती है। पहाड़ों पर चढ़ने से पहले बादल पवत श्रेणियों स टकराकर छलक पड़ते हैं। प्राय दोप-हर भर बादल बरसता रहता। उस समय खपरैलों पर पड़ती वर्षा की गूंज में ऐसी नींद आती है जैसे कोई थपकी देकर सुला रहा हो। दोपहर की नींद के बाद नीचे आ देखता हूँ गुरो अपने पुराने अभ्यास के अनुसार दोपहर में मेरे निचले बरामदे के सामने अपनी खिड़की म चर्खा कातने बैठी है। मेरी दृष्टि प्राय उस ओर चली जाती। उस का उदास पीला चेहरा मैला कुरता और लाल छींट की सिलावर और सिर पर बेपरवाही से समेटा हुआ दुपट्टा। कभी गली म आहट पा आकाश से पृथ्वी को छूती वर्षा के जल के तारों म से उस की दृष्टि मेरी ओर भी हो जाती है। पहचान पाने की एक हल्की सी मुस्कराहट बादलों में से पल भर को झाक जाने वाली धूप की भाँति आकर

विलीन हो जाती। सावन की यह सूनी श्यामल दुपहरिया को किसी परस्पर रहस्य में बिताने का प्रोत्साहन गुरो के उदास मुख से कभी न मिला। वह यों भाव-शून्य होकर चर्खा चलाती रहती मानो वह चर्खे का ही अंग है।

तीसरे पहर डाकिया इलाहीमियां छोटे छोटे लड़के-लड़कियों का गोल पीछे लिये बोली ठोली कहते हमारी गली से गुजरे। एक पोस्ट कार्ड मेरे लिये था। साढ़े तीन महीने बाद कलमसिंह की भी चिट्ठी आयी। डाकिये को देख बुढ़िया हांफती हुई ऊपर की छत से उतरी और चिट्ठी को पढ़ाने मेरे यहां आ गई। गुरो ऊपर की खिड़की से देखती रही।

अपने नाम आया पोस्टकार्ड पढ़ सकूं इस से पहले अनेक आशीर्वाद दे बुढ़िया ने सरकारी मोहर का एक लिफाफा मेरे हाथ में दे दिया।

कठिनता से वह दुखदाई समाचार बुढ़िया को सुनाया। कलमसिंह लाम पर खेत हो गया था। बारह रुपया महीना गुरो के नाम कलमसिंह की पेंशन का हुकुम भी था।

बुढ़िया चीख मार पछाड़ खा वहीं गिर पड़ी। ऊपर से मेरी दादी उतर आयीं। अगल बगल के मकानों से रामलाल और शेरसिंह के घर की स्त्रियां भी झांकने लगीं। और भी बूढ़े बुढ़िया एकत्र हो सिर और कपड़े नोचती छाती पीटती कलमसिंह की मां को सम्भालने लगीं। मैंने एक बार ऊपर गुरो की ओर—वह अपने चर्खे के सामने निश्चल बैठी रह गई।

कसबे भर के बूढ़े बुढ़ियां कलमसिंह के मकान में कुछ समय के लिये बैठने आते और आंख पोंछते बुढ़िया को सान्त्वना दे चले जाते।

चार पांच दिन तक उस खिड़की से समय असमय बुढ़िया का विलाप सुनाई देता रहा। गुरो के रोने का स्वर नहीं सुनाई दिया। बुढ़िया के विलाप में सीठने (मृतक की प्रशंसा) और कोसने में सभी शामिल थे। उस हृदय विदारक चीत्कार के कारण अपने निचले बरामदे में बैठना सम्भव न होता। निरन्तर वर्षा के कारण कहीं जाना भी कठिन था।

दो सप्ताह से अधिक गुज़र गया। पहले पहर आकाश खुलकर धूप फैल रही थी। बुढ़िया आयी। उसकी आंखें सूजी हुईं और लाल थीं। कलमसिंह

की मृत्यु के समाचार का बादामी सरकारी कागज़ और तहसील के नाम पेंशन के हुक्म का कागज़ से किसी तरह छीना पढ़कर वह हमारे यहां ऊपर पहुंचा।

मेरी सौ बलाएं अपने सिर ले बुढ़िया ने फिर से कागज़ पढ़ाकर सुना। निरन्तर बहते आंसुओं को दुपट्टे से पोंछने का व्यर्थ प्रयत्न करते हुए उसने पूछा— पेंशन के लिये मैं कहां जाऊं ? गुरो के प्रति संकेत कर बुढ़िया ने कहा उसका क्या है। उसके मस्तक में सब कुछ है। वह जवान है। उस के हाथ पर चलते हैं। उसे क्या फिक्र है। मेरा तो सहारा वही लड़का था। इस कोख से तीन लड़के पैदा किये यही एक बचा था। उसे भी डायन खा गयी। —शंकर खत्री शंकरगढ़ जा रहा था। उसी के साथ जाने की बात कह बुढ़िया चली गयी।

भादों जा रहा था। बादलों का रंग गहरा हो गया। गर्जन अधिक और वर्षा कम होने लगी। गुरो के चेहरे पर आने जाने वाली मुस्कराहट की धूप भी विलीन हो चुकी थी। कलमसिंह के छप्पर के निचले तल्ले में शंकर खत्री गुड़ भर लेता था। ऊपर खपरैल की छत के नीचे एक कोठरी में उस खिड़की के अतिरिक्त बैठने की और जगह न थी। गुरो अब भी वहीं बैठी रहती।

तेरहवीं के बाद से उसने फिर चरखा भी रख लिया। चरखे से तार भी खींचती ही थी। अब नीचे गली में आहट सुन उसकी दृष्टि उधर न जाती और कभी उधर देखने लगती तो वहां देखने को कुछ न होने पर भी देखती ही रहती। जो कुछ वह देखती थी वह गली में नहीं उसके मन में ही था। मैं अब भी कभी उस की ओर देख लेता परन्तु देखने से दुख सा होता। दृष्टि टिक न पाती। इस से प्रायः उधर देखता ही न था।

वही तीसरे पहर का समय था गुरो अपनी खिड़की में और मैं निचले बरामदे में। एक गहरी बौछार बरस कर पानी थम गया था। गुरो अपनी खिड़की की चौखट से सिर टिकाये नीचे खिड़की की ओर आंख किये बैठी थी। मेरी दृष्टि उस की ओर गयी और फिर नीचे गली में।

वर्षा के बाद फजलू और महम्दे की चीनी बत्तख अपने चौड़े झिल्लीदार पंजों पर अपना बदन तौलतीं चारे की खोज में गली में निकल पड़ीं। चौक की ओर से माल से लदे खच्चर भी गले में बंधे घुंघरू बजाते चले आ रहे

थे। बत्तखें खच्चरों से बिदक कर इधर उधर हो जातीं। सहसा एक खच्चर का सुम एक चीना बत्तख की पीठ पर पूरा पड़ गया। खच्चर निकल गया। बत्तख छटपटायी पर फड़फड़ा अपनी पीली चोंच खोल बत्तख ने श्वास लेने का यत्न किया और दम तोड़ गयी।

खच्चर ने नहीं समझा क्या हुआ। खच्चरवाले ने देखा खिजलाहट से एक ओर थूक बत्तख को गाली दे बत्तखों के मालिक के पहुंच जाने से पहले ही निकल जाने के लिये खच्चरों को जल्दी से हांकता हुआ चला गया।

दुर्घटना से बत्तख का यों मर जाना अच्छा नहीं लगा। उधर से दृष्टि हटाने के लिये गुरो की खिड़की की ओर देखा—वह वैसे ही निश्चल चौखट से सिर टिकाये अब भी कुचली गई बत्तख को देख रही थी। दृष्टि फिर उसी ओर लौट गयी।

खच्चरों के सुमों से बिदक कर भाग गयी बत्तख घटनास्थल पर लौट आयीं। उन्होंने कुचली हुई बत्तख को घेर लिया। उसे सूंघ चोंच से उस के पर सहला उसे सचेत कर सकने के यत्न में असफल हो एक एक कर वे मृतक बत्तख को छोड़कर चली गयीं। रह गया केवल एक बत्तख जो अब भी अपनी चोंच कुचल गई बत्तख की चोंच में दे उसे उठाने का प्रयत्न कर रहा था अब भी अपने पंजों से निश्चेष्ट बत्तख के शरीर को सचेत करने में लगा था। अपने मृतक साथी की उपेक्षा से वह बत्तख व्याकुल हो कुरला उठता परन्तु उसे छोड़कर जा न पाता। मन में करुणा का उच्छ्वास सा उठ आंख सजल हो आयीं। उस ओर से दृष्टि चुराने के लिये फिर गुरो की ओर देखा। वह अब भी अपलक निश्चेष्ट बत्तखों के व्यवहार को देख रही थी। उस की स्थिरता से धृष्ट हो आंख या नाक पर आ बैठने वाली मक्खियों को उड़ा देने के लिये भी उसका हाथ न हिल पाता।

गुरो की दृष्टि का अनुसरण कर आंखें फिर बत्तखों के जोड़े की ओर चली गयीं। कुचली हुई बत्तख के बिछोह में वह जीवित बत्तख पागल हो गया। प्रेम और प्रणय के उपचारों के बाद भी अपने जोड़े को अचल देख बत्तख झुक झुकाकर प्रणय की अन्तिम क्रिया में व्यस्त हो गया। उस ओर देखते अच्छा न लगा विशेष कर एक स्त्री की दृष्टि के सामने। आंख फिरा लीं परन्तु झुकी हुई दृष्टि गुरो की खिड़की की ओर से घूम कर लौटी। वह

अब भी उसी प्रकार निस्संकोच मृतक और जीवित बत्तख के जोड़े की काम क्रिया को देख रही थी। गुरो के प्रति सहानुभूति होने पर भी उसका वह निस्संकोच और फूहड़पन भला न लगा। मोढे स उठ मैं ऊपर चला गया।

कुछ देर बाद कलमसिंह की मा की पुकार सुनाई दी। वह बहू पर बिगड़ रही थी— सांझ होने का आई। थकी मांदी लौट कर आई हूँ। क्या पानी लेने भी मुझे ही जाना होगा ?

देखा—गुरो अब भी चौखट से उसी प्रकार टेक दिये बठी है। बिल कुल स्थिर। सास की बात जैसे उसने सुनी ही नहीं। उसकी वह स्थिरता भयानक सी लगी। उसी पल कलम की मा सिर पीट कर चीखती सुनाई दी— हाय मैं उजड़ गई !

चोट खा हृदय धक्क से रह गया। दृष्टि फिरा ली। नीचे प थर मढ़ी गली में दिखाई दिया—वहा बत्तखों का जोड़ा। कुचली हुई बत्तख के ऊपर ही उस का साथी निर्जीव पड़ा था उस समय उस क्षुद्र जीव की ओर क्या ध्यान जाता ?

गुरो की सास के विलाप स पड़ोस की स्त्रियां और मर्द आ जुटे। अनेक प्रकार से बुढ़िया के दुर्भाग्य और शाक का चर्चा हुआ। मुझे भा जाना पड़ा। रामलाल ने बिना किसी के कहे कफन का कपड़ा ला दिया। शंकर खत्री अर्थी के लिए बाँस फूस और रस्सी ले आया। दुर्भाग्य से उसी समय फिर बू दें आ गयीं। धीरे धीरे अर्थी बन रही थी और चर्चा चल रही थी गुरा की बद किस्मती की—मरना तो था ही दस रोज पहले ही मरती। नसीबन सुहागिन तो कहलाती। अर्थी पर फुलकारी पड़ जाती।

पानी रुका तो अंधेरा हो गया। श्मशान दूर था। फिर भी मोहल्ले म किसी ग़रीब का मुर्दा पड़ा रहे, यह कैसे हो सकता था। लालटेन जला दी गई। लोग अथा पर कन्धा लगाने को ही थे कि हवलदार साहब ने आ दारोग़ा साहब का हुक्म सुनाया— लाश बिना तहकीकात के नहीं उठ सकती। —बेबस लाग इधर उधर खिसकने लगे। दारोग़ा साहब स्वयं कुछ दूरी पर खड़े रहे। रामलाल शंकर खत्री और मैंने आगे बढ़ दारोग़ा साहब से बातें कीं।

दा ोगा साहब को मामले म शक की गुन्जायश जान पड़ती थी । हूमा को कोई बीमारी नहीं थी सुबह क वक्त पीपल वाले कुए स पानी का घड़ा लाते उस देखा ा । बुढ़िया का सलूक उस के सा । अच्छा नहीं था । म हूमा के खाविन्द न अपनी पेंशन का वाि स अपनी बीवी को मु रर किय था । बुढ़िया इस म खुश नहीं थी । बोले— ।इब क्या किया जाय हम फनाम है ऐसे वक्त सख्त ि सी से काम लेना पड़ता है लेकिन जुम की तहकीकात क ना पुलिस का फर्ज है ।

पिछले दा ोगा साहब होते तो और बात थी । ा लाल शब बनी और हम रे अपने ल ला जी का उन मे सूब ा । कसबे की इ जत बने क लिये बीसियों वा द त दबा दी गयीं । द ोगा गुलजा ीलाल खाने पीने क शौकीन थे । लोग कहते थे इन का पेट बड़ा है लेकिन आँखों में लिह ज़ भी ा ।

यह दा ोगा स हब ऐसे रूखे हैं कि किसी की हिम त उ ा कुछ कहने की नहीं हो ी । घ के और नीयत के भी वैसे ही हैं पहले दा ोगा साहब के यहां दो भैंस ीं तीन नौकर थे और दो घ ड़ियाँ इन की बेगम खुद रोटी ाप लेती हैं दूध के लिये बक ी और सवारी के लिय मजबू न एक टट्टू है । इ दम दीं आँटे हैं जमे दू रा कोई कपड़ा है ही नहीं ।

लाचा हा लौ आये । रात भर नींद न आई । दारोगा को शक है कि पेंशन हथियाने क लिये बुढ़िया ने हू को कुछ खिला दिया । ल श होशियार पुर जायेगी । तहकीकात का मतलब है शव की चीर फाड़ (Post morto n) । बुढ़िय हि ासत में ले ली गई ी । बुढ़िया के प्रति सहानुभूति का विचार नहीं अ थ प न्तु गु ा के शव की ची फाड़ के विचा मन ठा जा रहा था । दिल की धड़कन सहसा ब द हो जाने से उस की मृ यु हो गई थी पर क्यों ? थानेदा साहब की तसल्ली क लिये क्या जवाब हो ?

ात भर गु ो की मृ यु के बारे में दा ोगा साहब को सतुष्ट क सकने ला यक का ण सोचता हा । गुरो हृदय की गति रुक कर उसकी मृत्यु हो जाने की प िस्थितियों पर गौर क ते समय केवल नीचे गली में बछड़े क कुचले जाने और दूस ी बछड़े के अपने ा ी क लिये प्राणाकुल हो काम तु हो प्राण दे देने की ही घटना दिखाई दे ी ी । वही क्षुद्र जीवों का व्यवहार ! सहसा मन में ख्याल आया—अपने ब ड़े की मृत्यु के दुख स पक्षी प्राण दे

सती हो जाने की घटना ने गुरो के मन पर आघात किया और वह सती हो गई। एक सती के शव के निरादर की बात सोच मन तड़प उठा। शेष रात नींद न आई। सुबह उठ दारोग़ा को सारी परिस्थिति समझाने का निश्चय कर पड़ा रहा।

दारोग़ा साहब रोज़नामचा लिये बैठे थे। अंग्रेज़ी में बोला इस से कुर्सी मिल गई। शत संध्या की मृत्यु के विषय में बात शुरू की। अपनी वफ़ादारी को थामे दारोग़ा साहब प्रकट में ध्यान से मेरी बात सुन रहे थे और जी जी हुँकार भरते जाते थे।

बात पूरी होने पर उन्होंने पूछा— मास्टर साहब आखिर आप मौत की वजह क्या बतायेंगे?

गम्भीरता से उत्तर दिया— विरह की पीड़ा सदमए मुफ़ारकत!

मुआफ़ कीजिये —अपनी कुर्सी पर करवट बदलकर उन्होंने उत्तर दिया— पुलिस की दफ़ा में ऐसी कोई चीज़ नहीं है।

सती की मान रक्षा के प्रयत्न में असफल हो पुलिस की दफ़ा के सम्मुख सिर झुकाकर मैं क्षुब्ध और असहाय लौट आया।

रिजक

चौथे पहर अदालत से लौट मिस्टर खन्ना ने दरवाजे पर दस्तखत दी। भीतर से साकल बन्द नहीं थी। दरवाजा खुल गया। कौतुहल से उन्हों ने सोचा कौन उसकी प्रतीक्षा म बठा है ? देखा तो बग़ल वाले सोफा पर स्वयं मिसेज खन्ना बठी थीं और उनके समीप कोई दूसरी भले घर की स्त्री। खन्ना का एक बरस का बालक इन अभ्यागत भले घर की स्त्री की गोद में था। महिलाओं में धीमे स्वर म बात चीत हो रही थी इसलिये पत्नी से चार आँख हो जाने पर भी ये कुछ बोले नहीं।

हाथ की मिसिल को बठक की तिपाई पर छोड़ खन्ना साथ के कमरे से भीतर जा कपड़े बदलने लगे। वे सोच रहे थे यह कौन नई सहेली इन की आज आई हैं। पहले कभी देखा हो याद नहीं पड़ता। देखने में बुरी नहीं। उम्र इन से कुछ कम ही होगी। बदन लम्बा और लचीला। आँख काफ़ी बड़ी और रङ्ग भी साफ़। धोती या साड़ी पहनने का ढंग पढ़ी लिखी जैसा। समानता के भाव से, सोफा पर साथ बठी है अवश्य पर एक हिचक सी दिखाई पड़ती है।

स्निग्धता और कामलता की छाप जो खास ढङ्ग के भोजन या कठिन श्रम न करने से सौ दर्य न रहने पर भी भले घर क लोगों के चेहरों पर बनी रहती है, अलबत्ता उतनी स्पष्ट न थी। धोती के किनारे में भी सौम्यता की अपेक्षा भड़क अधिक थी। यह सब बात एक एक कर के न सोचने पर भी खन्ना के विचार म घूम गई।

कुछ मिनिट बाद भीतर आ जब श्रीमती ने खन्ना के नाश्ते के लिये नींबू का शरबत जल्दी लाने के लिये नौकर को हिदायत की खन्ना ने प्रश्न किया— यह नई सहेली कौन थी ?

श्रीमती ने बताया—उन के मकान के साथ की गली में चार रुपया महीने के जो क्वार्टर हैं उन्हीं में वह लोग कुछ दिन पहले आये हैं। ऐसे ही पड़ोस में मिलने के लिये चली आई बेचारी ब्राह्मणी है।

सामने रखे शरबत के गिलास की ओर न देख खन्ना ने शंका की—रङ्ग ढङ्ग तो चार रुपये महीने के क्वाटर जैसा नहीं जान पड़ता।

औरत भली है —श्रीमती ने विश्वास दिलाया बेचारे मुसीबत में हैं। तीन बच्चे हैं। मर्द बेचारा बेकार है। किसी के यहां काम करता था मालिकों ने कह दिया अब काम नहीं है। प्राइवेट नौकरी में यही तो खराबी होती है।

बात को आगे चलाते हुए खन्ना ने पूछा— तो फिर गुज़ारा कैसे चलता है ?

मायके में अच्छे खाते-पीते हैं कुछ सहायता कर देते हैं। —श्रीमती ने उत्तर दिया।

शरबत का गिलास पीते हुए जाने क्या सोच कर खन्ना ने कह दिया—मायके में सभी स्त्रियों के छत पर छप्पन बीघे पोदीना होता है।

यह मज़ाक श्रीमती को बहुत प्रिय नहीं जान पड़ा। मामूली तौर पर झुमक कर कहा— तो होने दो तुम्हें क्या पड़ी है ?

× × ×

इसके बाद रविवार के दिन दोपहर के समय खन्ना भीतर की बैठक में तख़्त पर तकिये के सहारे लेटे कुछ पढ़ रहे थे और श्रीमती नीचे दरी पर बैठी मशीन से मुन्ने के लिये नये फ्राक सी रही थीं। सहसा भीतर की ओर के दरवाज़े का परदा हटा। पड़ोस की वही नई सहेली बेतकुल्लफी में चली आ रही थी। सहसा खन्ना को देख लज्जा से सिमिट कर पीछे हट गई। इस

सिमिट कर पीछे हट जाने में एक ऐसी झपट-सी थी कि लज्जा और श्रीमती दोनों ही की दृष्टि उस ओर गई। लज्जा के होठों पर मुस्कराहट फिर गई।

मशीन के हत्थे के पहिये को रोक पर्दे की आड़ से दृष्टि उधर पहुंचा श्रीमती ने पुकारा— आ जाओ न यहीं आ जाओ । क्या हर्ज है। इस आग्रह से सहेली माथे का कपड़ा जरा आगे खिसका दृष्टि नीचे किये भीतर आ गई। लज्जा की ओर पीठ कर श्रीमती के बहुत समीप वे जाकर कुलवधू के ढंग से बैठ गईं। शील अवसर और स्थान के अनुसार होता है। किसी को पीठ दिखाना असभ्यता है परन्तु कुलवधुओं का शील पुरुषों को पीठ दिखाने में ही है।

सहेली कुछ देर संकोचवश बिल्कुल चुप बैठी रही। हाथ में थमी हुई पुस्तक पर आंखें झुकाये लज्जा के सतर्क कान मशीन की खड़खड़ में दबी जाती श्रीमती जी और पड़ोसिन की बातचीत की ओर थे। श्रीमती के कुछ पूछने और बोलने का शब्द अलबत्ता अवश्य सुनाई दिया परन्तु सहेली का कण्ठ स्वर कैसा है यह लज्जा नहीं जान पाये। वे प्रश्नों का उत्तर दे रही थीं या तो केवल सिर हिला सकने द्वारा या फिर इतने धीमे स्वर में कि कोई शब्द लज्जा तक पहुंच भी पाया तो वह केवल सिलाई के सम्बन्ध में था।

कुछ देर बाद लज्जा को मालूम हुआ—वे मुस्करा देती हैं और एक सीमा तक जि़न्दा दिल हैं, लेकिन बहुत सम्भल कर और बच बच कर लगभग दो घण्टे बैठे रहने के बाद विनय को एक लचक से उन्होंने चलने की आज्ञा मांगी।

लज्जा को पीठ की ओर से यह लचक बहुत शील पूर्ण नहीं जान पड़ा। असभ्यता भी उस में कुछ नहीं थी थी केवल एक लजीलता या चुलबुलापन।

फिर आने का वायदा कर उन के चले जाने पर लज्जा श्रीमती से बोले— सहेली तुम्हारी है जोर की । परिहास की गुदगुदी से आंखों और होठों पर मुस्कराहट ला उन्होंने पूछा कैसे ?

देखा नहीं —लज्जा ने हाथ की पुस्तक एक ओर रखते हुए कहा कमर नागिन सी बल खाती है!

पसन्द आ गई तुम्हें ? —मशीन को रोक बखिया समाप्त कर तागा तोड़ते हुए श्रीमती ने परिहास में गहरे जाते हुए पूछा। उच्छृङ्खलता का

आन द देने के लिये तख्त पर पट लेट कर और तकिये को बाहों में दबाते हुए खन्ना ने उत्तर दिया— अरे पस द क्या ? बस देख लेते हैं और तपिश दिल की बुझा लेते हैं अपने तो साधू आदमी हैं।

नया बखिया आरम्भ कर श्रीमती बोली— क्या कहना, बड़े साधू हैं तभी तो कमर के बल की परख है। पुरुषों को जाने क्या आदत होती है, यही सब देखा करते हैं। इसके बाद करुणा द्रवित स्वर में बोलीं—बेचारी दुखिया है। भले घर की लड़की है। तीन बच्चे हैं। मद है तो बेकार बैठा है। कहाँ तक मायके से लाकर कुनबा पाले ? सीना-परोना सीख ले या कुछ काम कर ले ता भी कुछ हो। वैसे तो हिम्मती होशियार है।

इसके बाद सहेली के नाम का पता खन्ना को चल गया। सब लोग उसे केवल की माँ कहकर पुकारते थे। थोड़ी बहुत देर के लिये वह श्रीमती जी के यहाँ आकर सीने पिरोने या घर के किसी दूसरे काम में मदद कर जाती। मुन्ना को बहुत प्यार से खिलाती। प्राय खन्ना से देखा देखी हो जाती। राज रोज की बात हो जाने से माथे का कपड़ा आगे बढ़ाने की जरूरत न रही। सिर के काले घु घराले बाल साड़ी के आंचल से खूब दीखते रहते। मुख पर मुस्कराहट भी रहने लगी और वह दो एक बात बोलने भी लगी। श्रीमती जी के सामने ही खन्ना भी बात कर लेते— तुम्हारे उ हें कोई काम वाम कहीं मिला नहीं ?

नजर ऊपर उठा के वह उत्तर देती— आप इतने बड़े आदमी हैं कहीं कुछ कर तब न ? —या इसी तरह की कोई और बात।

केवल की मां श्रीमती को बहिन जी कह कर पुकारती थी। सालीपन की ग ध व्यवहार म आ जाने के कारण बहुत अधिक पर्दादारी और संकोच की जरूरत स्वयं ही न रही। ज्यों-ज्यों श्रीमती को कवल की मां के संकट का हाल मालूम होता जाता उनकी सहानुभूति उस के प्रति बढ़ती जाती। एक स ध्या जब खन्ना और श्रीमती भोजन के लिये थाली पर बठने जा रहे थे वह जल्दी म आई और श्रीमती को एक ओर बुलाकर चुपके से कुछ बात कर चली गई।

लौट कर श्रीमती ने करुणा पूर्ण स्वर म कहा— देखो न ! घर म दो पैसे नहीं कि तेल ला कर दिया जला सके। अ धेरे में लड़के डर क मारे रो

रहे हैं। —बरफ में दबे हुए बनारस के लगड़े आम चाकू से काटते हुए, श्रीमती ने जिस विह्वल स्वर और मुद्रा में केवल की मा का हाल कहा उसे सुन कर तले हुए परवल से पराठे का ग्रास लज्जा को ऐसा जान पड़ा मानो मु ह में रेत भर गया हो। मुन्ना को आम की एक फांक दे श्रीमती ने नौकर से बच्चे को दूसरी ओर ले जाने के लिये कहा। कटा हुआ आम लज्जा की थाली में रखते हुए उन्हों ने पूछा— कैसा है?

ध्यान केवल की माँ की ओर लगा रहने से कुछ बेपरवाही से आम चख लज्जा ने उत्तर दिया— अच्छा है।' यह समझ कर कि आम पर खर्चे पैसे व्यर्थ गये श्रीमती बोलीं— लखनऊ में तो आम खाने का धर्म नहीं मरे आधी ढेरी से तो कम आम देते ही नहीं। अब कोई गरीब आदमी डेढ़ रुपया रोज आम के लिये कैसे खर्च सकता है? और फिर आम क्या आ रहे हैं पैसे बरबाद करना है स्वाद तो है ही नहीं।

लज्जा के लिये आम का स्वाद बिलकुल नीरस हो गया। उन्होंने कहा— सवा डेढ़ रुपया जैसे कुछ होता ही नहीं। किसी गरीब के बाल-बच्चों का दो दिन पेट भर सकता है। उस के बच्चों के लिये दो तीन आम दे देतीं?

आम काटना जारी रख कर श्रीमती ने उत्तर दिया— 'एक अठन्नी दे तो दी है। रुपया दो रुपये पहले भी दो चार बार ले जा चुकी है। ऐसे काम थोड़े ही चलता है। वह मरा— केवल का बाप कुछ करता ही नहीं। आठ दस साल से बेकार है। यही कहीं महीना पन्द्रह दिन नौकरी करता है और फिर उस से कुछ होता नहीं। उसे नौकरी मिलती ही नहीं। ऐसे नालायक शादी क्यों कर लेते हैं? बच्चे क्यों पैदा करते हैं?

अविश्वास और विस्मय से लज्जा ने पूछा— आठ दस साल? तो गुजारा कैसे चलता है?' तब क्रोध में रहस्य का पुट मिलाते हुए श्रीमती ने उत्तर दिया अरे कुछ न पूछो इन लोगों की। महरी और मेहतरानी जाने क्या क्या कहती थीं। पहिले जिस मुहल्ले में रहते थे वहा इतना गन्द फैला कि बदनामी के मारे रहना मुश्किल हो गया, तब यहां आये हैं। बदनामी पीछे-पीछे यहां भी आ रही है।'

आशंका से सिर उठा खन्ना बोला— तो तुम परमेश्वर के लिये इस बीमारी को न पालो ! अपनी इ जत और हैसियत का तुम्हें कुछ खयाल है ?

श्रीमती कुछ तिनक कर बोलीं— किसी का दिया तो खाते नहीं कि दबते फिरें। कोई दुखिया अपना सुख दुख कहने आये तो उसे कैसे निकाल दें ? वह बेचारी गरीब है तो उस में हजार ऐब हैं। दस बरस से उस निखट्टू और तीन ब च्चों को पाल रही है सो नहीं दीखता। करे क्या ? वसे औरत बुरी नहीं। पर जब तीन बच्चों को भूखा सिसकते देखे तो करे क्या ? बेचारी फूट-फूट कर रो रही थी अपने कर्मों को ? कमबख्त के लिये दुनिया में कोइ काम ही नहीं रह गया। अरे मर भी जाता तो बेचारी की नाथ एक तरफ लगती उ ल्टे धौंस देता है। मैंने समझाया कि यह जिल्लत और बदनामी की जि न्दगी भी क्या है ? तो रो कर कहने लगी जो कहो करने को तैयार हू।

खन्ना त न्मयता से केवल की मा की बात सोच रहे थे बोले— तो वश्या और क्या होती है बस जाहिर नहीं है।

हाँ तो फिर क्या करे ? भोजन समाप्त कर थाली सरकाते हुए श्री मती ने उत्तर दिया दुनिया भर म नंगा नाच नाचने से अच्छा ही है कि बच्चों को लेकर घर में बैठी तो है।

खन्ना का स्वर कठोर हो गया— तो यह लोग कुछ ऐसा ही काम क्यों नहीं कर लेते ? महरा और महरी भी तो आखिर गुजर करते ही हैं ?

खन्ना के अविचार से कुछ खीझ श्रीमती बोलीं— तुम कसे यह सब कुछ कह डालते हो। बीस बिसवे ब्राह्मण हैं। महरे का काम करने लगेगा तो क्या कम थुक्का फजीहत होगी ? और फिर उस से ऐसा काम कोई करायेगा ही क्यों ? किसे आफत मोल लेनी है ?'

मैंने उसे कहा जीजी को बच्चा सम्भालने के लिये एक औरत की जरूरत है। भले आदमी हैं। उनके यहां दूसरे नौकर-चाकर हैं ही बस बच्चे का काम है। तो कहने लगी—भई और सब कुछ कर दगे पर गू-मूत हम से कैसे धोया जायगा ? आखिर तो ब्राह्मण हैं लाग क्या कहेंगे।

यों तो गुप्ता बाबू से कह कर रेडक्रास में नर्स का काम सीखने लगे। काम भी सीख जाय और बीस-पच्चीस रुपया वजीफा भी मिलने लगे पर जात का क्या करे ?

खन्ना को क्रोध आ गया बोले— मरने दो सालों को। सब कुछ करके भी ब्राह्मणपना बाकी है।

पति के क्रोध को व्यर्थ बताते हुए श्रीमती ने भय से कहा— नहीं आज कल मशीनी कसीदे के किनारे की साड़ियों का बहुत रिवाज़ चल रहा है। अपनी सिंगर मशीन के लिये दो चार पुर्ज़े ख़रीद ल। अपने काम भी आयगे और वह कढ़ाई पर साड़िया ले आया करे। महीने में बीस पच्चीस साड़ियां मैं ले दूगी क्या बड़ी बात है? उस रोज़ डाक्टरनी महरोत्रा की बहू और न जाने कितनी ही औरत कह रही थीं कोई काढ़ने वाली नहीं मिलती। फिर किश्त पर अपनी मशीन ले लेगी। ख़याल है काम कर लेगी। अभी आँख का पानी नहीं मरा है।

केवल की माँ श्रीमती जी के यहाँ आती-जाती रहती। कभी घर से अपने कपड़े काट लाती और मशीन पर सी लेती। श्रीमती का कोई काम करती और बात चीत भी चलती रहती। निस्संकोच के कारण खन्ना से दो टूक मज़ाक भी चलता रहा। कभी खन्ना कह देते आज साड़ी ज़ोरदार पहने है? कभी खन्ना के दफ़्तर में अकेले रहने पर और पानी का गिलास मांगने पर श्रीमती कह देती— जाओ जल दे आओ।

आशंका और भय से आँख फैला कमर को तनिक हिला केवल की माँ कहती— हाय हमें डर लगता है —और फिर गिलास ले दफ्तर में चली जाती।

संकोच नहीं रहा। केवल की मां और श्रीमती को एतराज न होने पर मज़ाक में भी कोई भय न था। कोई विशेष अभिप्राय न होने पर यों ही ज़रा मज़े के लिये खन्ना केवल की मा के अकेले दफ़तर में या बठक में आ जाने पर कह देते – बैठिये जनाब !' और लहू में मामूली सी चिनचिनाहट हो जाती। जैसे बिहारी सतसई के दोहे पढ़ने से या फ़िल्म में नायक नायिका को एकान्त में देखने से होता है।

कसे हुए ब्लाउज़ में उसके जोबन और गेहुआ रङ्ग की ठोस बाहों पर नज़र दौड़ाने से एक स्फूर्ति सी अनुभव होती। श्रीमती के अत्यन्त कोमल और खूब गोरे रग में भी वह बात न थी—चाहे श्रीमती के जोबन का उफान उतर जाने के कारण हो या खन्ना के लिए उसमें नवीनता न रहने के कारण।

जसे नित्य पराठे खाने वाले का मन कभी बाजरे की रोटी और अमिया की चटनी की ओर लपक जाता है।

×   ×   ×

खन्ना ने एक दिन पूछा— तुम्हारा मायके का नाम क्या है ?'

हाय ! —ठोढ़ी झुका और आँख फला केशव की माँ ने कहा मायके का नाम कहीं बोला जाता है ?

खन्ना ने रूठ कर कहा— हमें नहीं बताओगी अच्छा न बताओ।

मेज पर शरीर का बोझ डालते हुए वह बोली अच्छा बताय ? चम्पा ! किसी से कहना नहीं।

साड़ी और ब्लाउज की बात का जिक्र खन्ना ने किया। चम्पा ने कहा— इतने बड़े वकील साहब कहलाते हैं हमें तो कभी एक भी साड़ी नहीं ले दी। देखो, सब छन गई ! अपनी साड़ी की ओर संकेत कर उस ने कहा।

अच्छा ले दगे —खन्ना ने उत्तर दिया। वे जानते थे श्रीमती कई धोतियाँ चम्पा को दे चुकी हैं पर शायद वह एक अच्छी नई सी धोती चाहती है।

चम्पा का साहस बढ़ चुका था। खन्ना को अकेले में देख कभी वह रुपये दो-रुपये की फर्माइश भी कर देती। खन्ना का विचार था चम्पा को जो कुछ दिया जाय वह श्रीमती ही द ताकि मामला साफ रहे।

खन्ना ने कहा— अपनी बहिन से क्यों नहीं कहती ?

उनकी कुर्सी के बिलकुल समीप आ चम्पा ने उत्तर दिया— वाह जो हम तुम से कह सकती हैं सो बीबी जी से थोड़े ही कह सकती हैं। आखों में आखें डाल उसके देखने का ढग ऐसा था कि खन्ना मुस्कराये बिना न रह सका। उस ने देखा खन्ना की आंखों में लाल डोरे फिर आये हैं और उस का कण्ठ कुछ बोझल हो गया है। सहसा वह बोली अब चल कोई आ जायगा हमें डर लगता है।

खन्ना बोला— जरा ठहरा न। ठहर वह गई और मेज के पास मंडराती रही। अपनी पहुँच के भीतर उस के शरीर के इठलाने से खन्ना

सोचने लगा। इसके शरीर के स्पर्श से प्राप्त होने वाली अनुभूति जाने कैसी होगी ?

उस की बांह पकड़ खन्ना ने कुर्सी पर बैठने का इशारा किया। वह जैसे हड़बड़ा कर उसके कंधे पर आ टिकी। खन्ना की बांह उसकी अशिथिल कमर पर चली गई। खन्ना के लिये यह अनुभूति अत्यन्त रोमांचकारी थी जैसे उस का मस्तिष्क घूम सा गया। उसे समेटते हुए खन्ना ने पूछा— चम्पा हम से यों भागती क्यों हो ? चम्पा ने शिथिल हो जवाब दिया अरे हम क्या भागेंगे। हम गरीब आदमी हैं तुम बड़े आदमी हो। खन्ना कुण्ठित हो चुप रह गया।

चम्पा ने मेज के नीचे फैले अपने पांव से खन्ना के पांव का अंगूठा दबा कर पूछा— चुप क्यों हो गये ? जबरदस्ती मुस्कराने का यत्न कर खन्ना ने उत्तर दिया तुम कहो।

चम्पा फिर उसकी बगल में पहुंच गई और खन्ना की बांह उसकी कमर में परंतु मन में उस के एक भीरुता समा रही थी। चम्पा ने कहा— हमें दस रुपये का बड़ा जरूरी खर्च है। चाहे हम फिर फेर देंगे।

किसी काम के लिये श्रीमती ने रुपये खन्ना को दे रखे थे। यों रुपये उन के अपने पास रहते न थे। उस समय दस का एक नोट निकाल कर दिये बिना खन्ना रह न सका।

रुपये का हिसाब समझाते समय खन्ना को कहना पड़ा दस रुपये जाने कहां गिर गये या कहीं गलती से एक की जगह दो नोट दे दिये।

श्रीमती ने चिढ़ कर कहा— रुपया अठन्नी तो खोया ही करते थे अब नोट भी खोने लगे। ऐसी ही भारी आमदनी है न ? तुम्हारी बेपरवाही की तो हद है। बात टल गई।

× × ×

उस दिन था रविवार। खन्ना चाहते थे बैठक में बैठना और श्रीमती कह रही थीं— फायदा क्या ? यहीं तख्त पर बैठो। दो जगह पंखा चलाने से लाभ ?'

एक मिसिल जरूरी देखनी है कल तारीख है । —कह कर खन्ना टल गये और दफ्तर में जा बठे ।

चम्पा कभी गली के दरवाज़ से और कभी सड़क से आती थी । सड़क के दरवाज़े से वह आयी और सांकल लगा ली । फिर धीमे स्वर में पूछा— बीबी जी कहा हैं ?'

भीतर ।'—खन्ना ने उत्तर दिया ।

'यह दरवाज़ा मूंद दूं । —उसने पूछा और बहुत धीमे से मूंद दिया ।

चम्पा सामने बैठ गई । खन्ना की नसों में रक्त का वेग तीव्र होने लगा । चम्पा घर पर अभी झगड़ा करके आ रही थी । कानों के बुन्दे उसने पच्चीस में बनिये के यहां रखाये थे सो सूद समेत चालीस के हो गये थे । बनिया कहता था—दो दिन में छुड़ा नहीं लोगे तो हम बेच डालेंगे फिर मत कहना । खन्ना चाहे तो चालीस दे सकता था परन्तु कैसे ? अभी इतना ज़ोर दे तो किस बात पर ?

खन्ना से सट कर खड़ी हो उसने कहा— कहो उस रोज तुम कहते थे आने को ? खन्ना को मुग्ध भाव में निश्चल बैठे देख उसे उकसाने के लिए चम्पा ने कहा—

तो फिर हम भीतर जाँय बहिनजी के पास ? चम्पा ने प्रश्न किया ।

नहीं बठो तो —खन्ना ने उत्तर दिया ।

बगल की कुर्सी पर चम्पा बैठ गई । कमर हिला दाय हाथ की उंगली ठोढ़ी पर रख नजर तिरछी कर उसने फिर पूछा— कहो न ?

उस की ओर देख खन्ना की आँख झुक गइ मेज के नीचे अपने पांव से खन्ना का पांव गुदगुदा चम्पा ने कहा— क्या हो तुम भी ?

हम बतायें तुम औरत हो और हम मर्द हैं ? —खन्ना ने उत्तर दिया ।

इस ललकार से सचेत हो खन्ना ने चम्पा की बांह ज़ोर से दबाई । उसी समय धीमे से दरवाजा खुला और पर्दे की आड़ से श्रीमती ने झाँका । झाँक कर कुछ चण वे जैसे समझती रही और फिर लौट गई ।

×   ×   ×

तीसरे दिन खन्ना के मकान के बगल की गली में चार रुपये वाले क्वाटरों के सामने हाथ का ठेला खड़ा था। ठेले पर फटे वस्त्र और टूटे बक्सों की मामूली सी गृहस्थी लादी जा रही थी। पड़ोसी वितृष्णा से देख कर कह रहे थे— लच्छा ही ऐसे हैं किसी भले पड़ोस में गुजारा हो कसे ?

ऊपर दो मंजिले की खिड़की से देखकर महरी ने श्रीमती से कहा— वह देखो केवल की मा सामान लिए चली जा रही है।'

श्रीमती उठी नहीं। घृणा से उन्होंने कहा मरे कलमही बहते बिच्छू को जल से बाहर निकालो वह पहले उंगली में ही डंक मारता है।

एक हाथ में लालटेन दूसरे में छोटे लड़के की उंगली थामे केवल की माँ बड़बड़ाती चली जा रही थी— अरे कोई किसी का रिजक थोड़े ही छीन लेगा। भगवान सब के जुल्म देखते हैं। उनकी धरती पर सब को जगह है। आदमी का बस चले तो कोई किसी को जीने थोड़े ही दे।

भगवान किसके ?

पिता जी धार्मिक प्रवति के थे। पढ़े लिखे लाग उन्हें श्रद्धा से महाशयजी कह कर पुकारते। जिस ओर वे जाते आदर भाव से नमस्ते के लिए हाथ उठने लगते। ईश्वर में उन का विश्वास अखण्ड और अथाह था। प्राथना करते समय उन का चेहरा करुणामय और स्वर गद्‌गद् हो जाता। आय समाज मन्दिर में प्रति रविवार को वे ही सामूहिक प्राथना कराते। वे प्रार्थना के शब्द बोलते जाते दूसरे सज्जन नेत्र मूंदे अपने मन में उस प्राथना का अनुमोदन कर भगवान से प्रार्थना कर लेते।

पिता जी की अभिलाषा थी उन की सन्तान भी ईश्वर की भक्त और सदाचारी बने। हम सभी बहिन-भाइयों को वे अपने साथ प्रति रविवार आर्य समाज मन्दिर में ले जाते। वहाँ हम लोग भगवान की स्तुति के भजन गाते हवन और प्राथना करते और धार्मिक उपदेश सुनते। इस के अतिरिक्त प्रतिदिन घर पर भी सुबह शाम सन्ध्या और प्रार्थना क समय भी सब बहिन भाई आख मूंदे पालथी मारे संध्या और प्रार्थना में योग देते और भगवद् भक्ति के भजन गाते।

पिताजी ने हम लागों को आयगायन और आर्य सगीत रत्न माला के अनेक भजन कंठ करवा दिये थे। संध्या के बाद उन के स्वर में स्वर मिला हम सब लोग गाते—

ओम् जय जगदीश हरे
पिता जय जगदीश हरे

मैं मूरख खल कामी
कृपा करो भरता] इत्यादि

पिताजी नित्य प्राथना करते— हे करुणा के सागर ! हम पाप के कीचड़ में फसे हुए अधम प्राणी हैं आपकी दया का ही सहारा है । हमारे मन में राग द्वेष लोभ मत्सर सभी दुर्गुण भरे हुए हैं । हे दयामय हमारे हृदय की अपवित्रता को दूर कर शुद्धता दीजिये ! हे परम पिता हमारे घोर अपराधों को क्षमा कीजिये क्षमा कीजिये क्षमा कीजिये वे दोनों हाथ जोड़ मस्तक नवा देते और फिर ओम् शान्ति ! शान्ति ! शान्ति ! कहकर आख खोलते ।

पिता जी हम उपदेश देते— 'सर्व शक्तिमान परम पिता परमात्मा से हमारा कोई भी अपराध छिपा नहीं रह सकता । वे माता पिता से भी अधिक दयालु हैं । सच्चे हृदय से अपने अपराध के लिये उन से क्षमा मागने पर वे हमारे पापों को तुरन्त क्षमा कर देते हैं और हम पाप के दण्ड से बच सकते हैं ।

गम्भीर हो प्राथना म मन लगाये रहने का यत्न करने पर भी चित्त प्राय भटक जाता । कभी गली में गुल्ली डण्डा खेलते लड़के दिखाई देने लगते कभी चौके में हुइया बनाती माता जी दिखाई देने लगतीं कभी पड़ोस की छत पर गुड़िया का खेल खेलती लड़कियां । पिता जी ने यह भी उपदेश दिया था कि मन में पाप होने पर चित्त भगवान की उपासना में नहीं लगता । हम मन को वश में करने का यत्न करते रहते परन्तु जाने कब और कैसे भगवान का ध्यान अंजली की अगुलियों में से जल की भांति फिसल जाता ।

अपने पापी मन को समझाते समझाते विचार आया—मैं कौन कौन पाप करता हू ? उस ग्यारह वर्ष की अवस्था म किसी भी पाप का रूप ध्यान में ठीक से न जंचता । जिन जिन पापों के विषय में धर्मोपदेशों में जिक्र सुना था उन में से किसी का भी करना याद न आया । तब मन में एक क्षोभ सा हुआ । कोई भी तो ऐसा पाप नहीं जिस के लिये सच्चे हृदय से क्षमा माग भगवान् का प्यारा बन सकू । तब फिर भगवान् मुझ पर अनुग्रह किस बात के लिये करगे ? कैसे मैं बाल्मीकी ऋषि की भाति तपस्वी बन सकता हू ?

भगवान की दया और उ‍न का प्रम पाने के लिये स‍च्चे हृदय से उन से क्षमा मागने के लिये एक पाप करना आवश्यक हो गया।

उस दिन संध्या स्कूल से लौटते समय पसारी की दूकान पर खड़ी भीड़ में छिप कर एक नारियल का टुकड़ा चुरा लिया। अपनी गली के समीप बाजार में मुहल्ले की लड़की को देख कुचेष्टा के संकेत से गालियां दीं।

उस दिन साझ का पिता जी के साथ बठ संध्या करने के पश्चात् अपने किये पापों को याद कर सच्चे पश्चाताप से आखो म आसू भर गद्‌गद् कंठ से भगवान् से प्राथना की— मैं खल और कामी हू मरा हृदय पाप से पूर्ण है। हे परम पिता मरे अपराधों को क्षमा कर अपनी श्रद्धा और भक्ति का दान दीजिये। अनुभव किया कि आज प्रार्थना करने स मुझे भी पिता जी क समान ही सन्ताप हुआ है। उस दिन भगवान् पर विश्वास कर अपने पाप क्षमा कराने का गर्व मन में ले रात भर गम्भीर बना रहा।

सुबह शाम प्राथना क बाद और भोजन से पहले पिता जी की आज्ञा से माता जी हम पढ़ने बठा देतीं। मैं रात की ग भीरता क कारण बस्ता खोले चुपचाप पुस्तक से पाठ याद कर रहा था। छोटी बहिन की दृष्टि बस्ते म छिपे नारियल के टुकडे पर पड़ गई। नीरा ने नारियल का टुकड़ा निकाल लिया। इस टुकडे क लिये नीरा और केवल में झगड़ा हो गया। माता जी के घटना स्थल पर पहुचने पर प्रश्न उठा—आखिर यह गरी का टुकड़ा आया कहां स?

अपने अपराध के लिये भगवान् से क्षमा माग ही चुका था। वह अपराध परम पिता परमा मा पिछली सध्या क्षमा कर ही चुके थे। हाथ जोड़ अपना अपराध स्वीका कर ही रहा था कि पिता जी भी बठक से ऊपर आये।

गम्भीर चहरे और क्रोध पूर्ण आखों से उन्होंने मेरी चोरी का अपराध सुना। मरे छोटे से गाल पर उन के लम्बे चौडे हाथ का एक थप्पड़ दाय स और दूसरा बांय से पड़ा। दोनो कान सुन्न हो गये परन्तु फिर भी खूब ऊचे स्वर म उनके बोलने के कारण सुन सका—मैं चोर बदमाश हू और मुहल्ल की लड़कियों से छेड़खानी करता हू चोरी करता हू। छोटे भाइ को उन्होंने नीचे से अपना मोटा बत लाने की आज्ञा दी।

थप्पड़ स बचन के लिये दोनों कानों पर हाथ रख लिये। आंखों से आसू बह रहे थे पाव काप रहे थे और मैं भगवान को गुहार रहा था— हे दयामय

कल कितने सच्चे और पश्चात्ताप पूर्ण हृदय से मैं अपने पाप के लिये क्षमा मांग चुका हू । हे परम पिता तुम मेरा अपराध क्षमा कर चुके हो । जल्दी आओ और अपने भक्त को बचाओ !'

परन्तु भगवान के पहुचने से पहले ही पिता जी की धमकी से कांपता हुआ छोटा भाई नीचे से मोटा बत ले कर आ पहुचा । एक साथ दो अपराधों की सजा मिली । मैं प्राय नि प्राण हो फर्श पर बिछा दिया गया ।

दिन भर रो रो कर सूजी हुई आखों से मैं बिसूरता रहा—भगवान् ने जब क्षमा कर दिया था तो पिता जी ने क्यों मारा ? क्या मेरा अपराध क्षमा हो जाने की बात भगवान् पिता जी से कहना भूल गये या भगवान् ने मेरा अपराध क्षमा ही नहीं किया था ? कितने निश्छल हृदय से भगवान् के सामने अपना अपराध स्वीकार कर क्षमा क्यों नहीं हुआ ? और क्या भगवान् केवल पिता जी की ही बात मानते हैं मेरी नहीं ?

तब निश्चय हो गया कि पिटने के लिये ही भगवान् ने हमें छोटा बनाया है । मैं प्राथना करने लगा—हे भगवान् शीघ्र ही मैं बड़ा हो कर बलवान हो जाऊ ताकि मुझे कोइ न पीट सके ।

नमक हलाल

गलियारे खेतों की मेंढ़ पनघट गांव की गली जहां कहीं भी भदई निकल जाता विनय से रसीली आंखों और मुस्कराहट से पांय लागन, सलाम, जुहार और जयरामजी बखेरता जाता। गांव के छोटे छोटे रेंगते बच्चों से ले कर लाठी टेक चलने वाली बुढ़िया तक से भदई का सौख्य था। शील से वह ऊंची जात के सभी लोगों को मालिक मालकिन पुकारता। जो इस श्रेणी में न आते वे उस के भैया, दद्दा, जीजी थे।

मथैयापुर और मथयापुर की जिलेदारी में भदई का व्यक्तित्व दोहरा था। सबका भला और हंसोड़ भदई मथैयापुर की जमींदारी कचहरी का गुड़ैत (सिपाही) था। उस के अपने सरल मिलनसार व्यक्तित्व के पीछे उस के पद का आतंक था। घास का भारी गट्ठर सिर पर उठाये बलई की पासिन को यदि भदई खेत की मेंढ़ पर हांफते देख पाये तो उसका बोझ अपने सिर पर उठा गोहरन तक पहुँचा देता। उसी सांझ जिलेदार साहब जमींदारी की सीर पर काम के लिये बेगार में बलई की पासिन को झोंटा पकड़ घसीट लाने का हुक्म दे दें तो भदई रूखी आंखों से पासिन के सिर में धौल जमा सचमुच उस का झोंटा पकड़ उसे खेत में ला खड़ी कर दे। उस समय पासिन के बिलखते बच्चों की चीख पुकार भी भदई के कान में नहीं पड़ सकती थी।

भदई का बाप चेतू भी अपनी जवानी में रियासत का गुड़ैत रहा था। दो रुपया माहवार तनख्वाह और सरकार से चार बीघा की मुआफी थी। सरकार ही उस के सर्वेसर्वा थे। भदई का बड़ा भाई जितई खेती बारी में

यस्त था। भद्दू को हल बैल से काम न था। वह बाप की जगह जिलेदार काट म गुड़ैती करने लगा। भौजाई के ताने सुन घर छोड़ कर वह काट की चौपाल म ही रहने लगा और पूरा सिपाही बन गया।

राजा साहब का भदई का यौवन के कुन्दन स दमकता शरीर और भक्ति के अनुराग स भीजी आख़ कुछ ऐसी रुच गइ कि उन्हान उसे जिलेदार के थाने स महल की कचहरी म बुला लिया। गर्व स माथा ऊँचा किये कन्धे पर लाठी धरे वह शरीर रक्षक के रूप म राजा साहब की अदली म बना रहता।

कचहरी स उसकी तनख्वाह तीन रुपया माहवार बध गई। पट्टा बदलाई या वसूली पर चार-छ आने पट्ट पीछे मिलता रहता। रियासत स इतनी तनख्वाह कभी किसी यादे को न मिला थी परन्तु भदई जैसा सिपाही भी रियासत में कभी क्या हुआ होगा? उस के लिये भाई बाप धम इमान सब सरकार का हुक्म था। राजा साहब की शक्ति का अस्तित्व मथैयापुर के हल्के म भदई के छरहरे कसरती बदन और ताम्बे के तार से गाठ गाठ बंधी लाठी के रूप म ही था। यों भदइ हलके भर का गुलाम था परन्तु गुड़त के रूप म रियासत की सरकार की शक्ति का आतंक। ब्याह भदई का बारह बरस की आयु में ही हो गया था। जवानी की ड्योढ़ी के बाइस बरस पूरे होते होते उसकी छबीली बारिन डेढ़ बरस के कल्लू को छोड़ आंख मंद गई। बप्पा और भौजाई के हजार ताने सुन कर भी भदई कल्लू को भौजाई के आंचल में सह जाने के लिए तयार न हुआ। संसार म अपने एक मात्र 'अपने' का अपने कलेजे के टुकडे को वह किसी दूसरे की दया पर कैसे छोड़ देता? कल्लू बाप के वात्सल्य और जमींदार के विशाल चौके के टुकड़ों पर पलता रहा।

भदई मह अंधेरे उठ धरती माता के चरन छू बदन में तेल लगा कसरत करता। जब से उसने रसौली रियासत के पहलवान मिर्जा को अखाड़े म धोबीपाट लगा पछाड़ दिया था राजा साहब ने प्रसन्न हो उसे कोठी से आधा सेर भैंस का दूध बांध दिया था। गाव के ब्राह्मण ठाकुरों के पट्ठे भदई के पुष्ट चिकने दमकते शरीर को ईर्षा से देखते। उन्हें न कसरत के लिए अवसर था न आवश्यकता। खेती के श्रम से उनके शरीर हारे और टूटे रहते। जिन्हें पेट भर भोजन कठिनता से मिल पाये भोजन पचाने के लिए कसरत का खयाल उनके लिए कैसा? वे ताना देते— नइय्या जुताई के

हारे बैल सांड़ों के मुकाबिले क्या ठहरगे ? इस प्र का उत्तर भदई देता जिसका खाते हैं उसके लिए हथेली पर सिर रखे भी तो हमी घूमते हैं। उस का लाल लगोट बंधी हुई लाठी और दण्ड पेलने के गुम्मे तेल से भीजे रहते। इ हीं का उसे शौक था।

महल की जवान चाकरनियाँ सटी हुइ मिजइ में उसके उभरे चौड़े सीने और धोती के पेंटे म कसी जघाओं की झलक से गुदगुदी अनुभव कर उस की उपेक्षा से कुठित हो तिर्छी निगाहों मे आंठ पिचका कुछ कह जातीं। भले घर की बहुआ की आख भी उसे देख फिरा ज ती। वह प्रयोजन नि प्रयोजन उसे कि ी बहाने भइया कहकर तृप्ति अनुभव कर लेतीं। लेकिन भदई का ध्यान उस ओर था ही नहीं। ल गाट का सच्चा र तृप्ति अनुभव करता था अपने संचित सुरक्षित यौवन की शक्ति के मद म। गाली-ठोली और दुचकारी का उत्तर वह गाली आर उपेक्षा स देता। उसे अनुराग था केवल सरकार के हुक्म से।

× × ×

फागुन बीत गया पर तु होली का मद अभी हवा म शेष था। पृथ्वी पर बावली हवा की ठेलमठेल से क्षुब्ध हो भूसे और धूल के कण अधर में लटक रहे थे। क्षितिज पर फली अमराइयों को आट म छन कर आती सूर्य की किरणों में वे सब सुनहले हो रहे थे। मंडाई और ओसाई के श्रम मे चूर किसान सफलता के उत्साह में थकावट अनुभव न कर अपने श्रम का फल बटोरने में लगे थे।

राजा साहब मथयापुर कार म लखनऊ से लौट रहे थे। दुरई तक जर नली सड़क है और आगे पाँच मील पलना और कमछा की राह कच्चे में होकर रियासत की कोठी तक जाना होता है।

राजा साहब की कार कमछा के खलिहानों के पड़ोस से गुजर रही थी। ढोलक की गमक के साथ नारी कण्ठ का आकर्षक स्वर सुन उन्होंने गाड़ी की खिड़की के काँच से झाका। कुछ काँच पर जमी धूल और कुछ गाड़ी की रफ्तार स्पष्ट कुछ दिखाई नहीं दिया। इमली के पेड़ के नीचे गोल बाँध कर खड़े लोगों की भीड़ में से एक गोरी गारी सी छरहरी औरत की झलक दिखाई दी और गाड़ी निकल गई।

ड्राइवर ने घूमकर कहा— हुजूर यही है वह बेड़िनी नसिया !

जल्दी म राजा साहब जो कुछ देख पाये उस से उनकी आंखों म चमक आ गई। मुस्कराहट दबा कर बोले— चीज तो बुरी नहीं।

इस म क्या शक ? हुजूर की परख का क्या कहना ! —विनय की मुस्कराहट स झुक कर मनेजर ने समथन किया।

आँख सड़क की ओर कर ड्राइव कहता गया— गरीब परवर खादिम ने तो अर्ज किया ही था लेकिन देखे बिना अन्दाज मुश्किल था। सूरत क्या है चेहरे का रंग जस खाना चम्पा ! सरकार तस्वीर समझिये ! और गला है जस मस्ती में आई कोयल ! गरीब परवर बीस की भी नहीं होगी। ऐसी कच्ची जस लखनऊ की ककड़ी की बतिया। ईमान की कसम सरकार, जैस बहिश्त से परी उतर आई हो पर शोख भी ऐसी है कि बात बात में अंगूठा दिखाती है।

राजा साहब की दृष्टि आकर्षित करने के लिये सीट पर कुछ आगे झुक मैनजर साहब बोले— गरीब परवर शहर के रंग तो हुजूर की बदौलत रोज़ ही देखते हैं। उन पिंजरों की मनाओं की चीख तो रोज़ ही सुनते हैं। आज यह जंगल की कबरी फुदकती हुई हुजूर के कदमों में हाज़िर हुई है। इसे भी देखा जाय हर्ज क्या है ? गरीब परवर दिल्लगी ही रहेगी।

ज़िलेदार की गढ़ी के समीप से जाती हुई मोटर पल भर को थम गई। भोंपू की आवाज सुन ज़िलेदार ज़मीन तक झुक सलाम करते हुये दौड़े चले आ रहे थे। आगे बढ़ मनेजर साहब ने उनसे बात की। ज़िलेदार ने सिर झुका राजा साहब क सुन सकने लायक स्वर में विश्वास दिलाया— हुजूर के गुलाम हैं। अन्नदाता के हुक्म से सब ठीक हो जायगा।

अगली साँझ कोठी पर नसिया का मुजरा हुआ। गस की रोशनी थी। नसिया भरसक बन संवर कर आई थी। पीली बुंदकी का लाल लहंगा गोटा टंकी काली ओढ़नी और गस क उजाले म काली दिखाई पड़ती हरी मखमली अंगिया में आधे कटे नारियल से दबाये।

नसिया के मद ने घुटने के नीचे दबी ढोलक पर थाप दी। नसिया आरसी पहने अंगूठे और तर्जनी से ओढ़नी उठा उठा ठुमकने लगी। ढोलक की गति द्रुत होने लगी और उसके साथ नसिया के चचल पांव। वह चहकी

सी नाचने लगी। नाच में छतरी की भाँति फैल गये लहँगे की छाया में टखना पर बधे घु घरू और पयजेबों के ऊपर लराते हुये पाये सी सुडोल गोरी पिंडलियाँ थिरक रही थ द्रु त गति स उसके घूम जाने से ओढ़नो में हवा भर सीने का उभार उघड़ आता। उसकी गोरी गारी बाहें और काली वेणी सफ़ द और काले सापों की भाति लहरा रही थीं। राजा साहब की बग़ल में बैठे मनेजर उचक उचक कर उनके कान में कुछ कह देते। राजा साहब के नेत्र कभी फल जाते और कभी अधमदे से रह जाते। चेहरे पर एक दबी सी मुस्कराहट आकर विलीन हो जाती।

नसिया सांस लेने का पल भर थमी। मैनेजर साहब कुछ कह पाय इस से पहले ही नसिया दूसरे नाच में ठुमकने लगी। भाव बता वह गाने लगी—

चितै दे हमरी आर करक मिटज रे

हाय र मार सइया ।

नसिया जो कुछ गा रही थी उसमें कला का परि कार न था। म द और कोमल का उसे ज्ञान न था। वह अन्तरा और स्थायी का भेद भी न जानती थी। वह कवल अनावृत्त वासना का संकत था। वह सीधी सादी गाव की बोली म ग्रा यवधू की उस अक कामना की बात कह रही थी जा पुरुष को पुकारती है उसके लिये छटपटाती है। नसिया का भाव दर्शन भी परिष्कृत संकेत मात्र नहीं उग्र था। अपनी नग्नता के कारण वह प्रबल और अदम्य हो रहा था। समीप बैठें मैनेजर और पीठ पीछे खडे डाइवर की वाह वाह म योग देने के लिये राजा साहब भी मुस्करा देते। एक अशर्फी मंगा कर उ हों ने नसिया को अपने हाथ से भट की।

मुजरा समाप्त होने पर नसिया अपने मद और देवर के साथ चलने को हुई। मैनेजर साहब अलग अकेले म राजासाहब स बात कर रहे थे। डाइवर को पुकार उ होंने कुछ समझाया। डाइवर लपक कर नसिया और उसके मद के पास आकर बोला— कहाँ है तुम्हारा डेरा कमछा म ? अब इतनी अबेर इतनी दूर क्या जाओगे ? कोस डेढ़ से कम क्या हागा ? उजाड़ में अकेले जाओगे ? यहीं पड़े रहो चटाई चदरा मिल जायगा।

नहीं अन्नदाता हुकुम हो आयंगे —नसिया के मद मनशा ने कहा। 'डेरे पर दूसरे लोग राह देखते होंगे

ड्राइवर ने फिर समझाया— अरे उजाड़ बियाबान है। इस इल्के के लोग बड़े सरकश बदमाश हैं। कहीं कुछ और आफत सिर आ। अंटी में सोना लेकर ऐसे रात बिरात नहीं चला जाता।

अपनी दो हाथ की लाठी छू मनसा ने उत्तर दिया— अरे मालिक की दुआ से देस बिदेस सब ऐसे ही फिरते हैं।

डाइवर के बहुत समझाने से भी मनसा रात कोठी पर बिता देने के लिये तयार नहीं हुआ। दो चार अशर्फी और पा जाने की आशा पर भी नहीं बल्कि आशंका से मह बाये खड़े अपने भाई को धमका कर उसने कहा— चलता है कि नहीं मुह बाये क्या देख रहा है ? हाथ में थमी लठिया से राह दिखा उसने नसिया का भी डाँ दिया चलती है री !

कल्लू नसिया का नाच देखते देखते नींद में लुढ़क गया था। भदई उसे गोद में उठा अपनी कोठरी की ओर ले गया। सांकल चढ़ा सामने पुआल की चटाई पर उसने लड़के का कथरी उढ़ा सुला दिया। दो पहर रात बीत चुकी थी। अष्टमी का चन्द्रमा पश्चिम ओर का अमराइयों पर झुक गया था। पछुवा बयार बाधा रहित मैदानों का पार कर नं ो खेतों में इठलाती पेड़ों से मरमराहट और सूखो झाड़ियों की गूंज लिये बही चली आ रही थी और बही चली जा ही थी। रात बीत जाने से हवा में खनक आ गयी थी परन्तु भदई चटाई पर उघाड़े बदन बैठा नींद की तैयारी में दिन की अन्तिम सुरती हथेली पर मल रहा था कि होंठ में दबाकर लेट जाय। छीजती चाँदनी म पीली चटाई पर उसके शरीर की कृष्ण रेखाय पीतल की पटिया पर बनी ताम्बे की मूर्ति सी जान पड़ रही थीं।

गप्पू कहार का बोल सुनाई दिया— भइया भदई हो! मनीजर साहब कोठी प बुलाइन हैं।

अप्रत्याशित बुलाहट की बात सुन भदई ने समझ पाने के लिये दृष्टि उस की ओर उठा प्रश्न किया— हू लेओ सुरती लेओ। सँवारी हुई सुरती की चुटकी हथेली पर ग पू की ओर बढ़ा शेष अपने निचले होंठ म दाब ली। अपना लाल लँगोट गले म लपेट चदरा कन्धे पर रख लाठी हाथ म ले भदई गप्पू के साथ कोठी की ओर चल दिया।

म नेजर साहब कोठी के पूरब की ओर फैली छांव में खड़े डाइवर से

बात कर रहे थे। उनसे कुछ दूर कटहल की चाँदनी में चमकती पत्तियों की छांव में बख्तावर और जगन बदन पर चदरा लपेटे काँख म लाठी की टेक लिये खड़े थे। चार कदम से ही भदई ने झुककर मनेजर साहब को सलाम किया।

आ मीयता क स्वर में नेजर साहब ने सलाम स्वीकार किया— कहो भदई सोवन जात रहे का ? हियाँ आओ ! देखो कितने सरकस लाग हैं ? परेशानी के भाव से उन्होंने गाली दे कहा और समथन क लिये डाइवर को सम्बोधन किया क्यों रहमत खाँ ?

अरे हुजूर क्या अर्ज़ कर ?—डाइवर ने उत्तर दिया इतना समझाया पर जस सरकार को कुछ गिनते ही नहीं। सरकार खुद हा ता मु ह लगाये हैं। अमा तुम टक टके बिकाती हो तु ह मिजाज किस बात का ? सरकार ने अशरफी दिला दी सो दिमाग बिगड़ गया। कहते रात भर ठह ो यहां। तब सुबह पसेरी भर अनाज दिला देते। कम जात लाग ऐसे ही ठीक रहते हैं।

शरीर को ढीला कर मनेजर साहब ने फिर भदई की ओर ध्यान दिया— भइया भद स कार को तुम पर बहुत भरासा है। कितना मानते हैं क्यों ? —मनेजर ने घूमकर डाइवर का समर्थन के लिये संकेत किया। उसने हामी भरी और क्या ?

मनेजर साहब कहते गये— लोग ऐसी सरकसी करने लगें तो रियासत दो दिन नहीं टिक सकती। अरे हाँ कल रियाया कहने लगे हम सरकार को कुछ गिनते ही नहीं तो यह रियासत और अमला कहा रह जायं ? कहो! उ होंने ठाढ़ी उचका भदई से पूछा।

जो हुकुम होय हुजूर सरकार का नमक खाते हैं —भदई ो निश्शंक उत्तर दिया।

मनेजर साहब एक कदम और समीप सरक आये— रहमत भी जा रहे ह जगन, बख्तार और गप्पू हैं। जैसे हा —गाली दे उ होंने कहा साली का उठा लाओ! फिर हम देख लग! समझ ?

माथा झुका भदई ने विश्वास दिलाया— धर्मौतार जो हुकुम।

च द्रमा कुछ और झुक गया पर तु अभी आँदनी थी। चारों आदमी लाठियाँ कंध पर रखे डारवर के साथ तेज चाल से चल दिये। चाल की तेजी

से दम न फूल जाय इसलिये धीमे होने के लिये जगन बात करने लगा—

अरे ससुरन का बिछाय देय ! त्योरस के साल जब कमछा के बिन ठाकुर की ऊख कीपट्टी मथुरिया के नाम बदली गई ठाकुर बहुत बिगड़े। बेचारे मथुरिया दो सौ रुपया नजराना सरकार का दियेन। जिलेदार साहब का खुश कियेन। दो रुपिया हमहू पायेन। बिन ठाकुर दस बरस ते पट्टी का जोतत रहे। दो फसल और कर ल पुस्तनी हो जाय। दोनों भइया कहन लगे—खेत नहीं छोड़गे चाहे खून बह जाय ! जबरन हम लेके खेत में जा पहुचे। जिला दार साहब हम का कहेन—भइया जगन जा ऊर बिटिया देखो ! हम बिसना बि धे और गप्पू का ले गये। ठाकुर हमें गरियान लगे। हम कहेन—दद्दा हमहू दो रोटी खाइत है अस न बको ! गाली का पुट दे उसने कहा—बहिन बिटिया गरियान लागे। दोनों हाथन ते लट्ठ लके हम पिल परेन। सब का बिछाइ के धर दीन। लागे पिल्ला से चिचियान ! उनके भइया राम बोल गये ! कहेन हम रियासत के गुड़त

हवल्दार साहब हमका हथकड़ी दे के थाना मों ल गये। हम कहेन—अब जो होय ! मालिक का नमक खावा है तो उनके हुकुम से जो होय ! सरकार का परताप है कि तीसरे दिन मछ छू उसने कहा—घर चले आयेन। बिनै ठाकुर का सबु जोर लगाते रहे। अब चाहे सरकार दारोगा साहब को पाँच सौ पूजे हों या हजार ! अपनी जान का भारी मूल्य चुकाये जाने के अभिमान में उसकी गर्दन ऊँची हो गई। जगन की बात समाप्त हुई तो ड्राइवर ने किस्सा छेड़ा – लखनऊ में सड़क पर मज़े मज़े जा रहे थ। साला सिपाही कहने लगा बाय चलो ! हमने कहा –चुप बे ! साला बकने लगा। गाड़ी से उतर वो एक झाँपड़ दिया साले को ! हवल्दार साहब तारे गिनने लगे।'

वे लोग कमछा के गोयड़ (पड़ोस) खेतों में पहुचे तो गाँव के कुत्ते भौंकने लगे। जगन ने कुत्तों को गाली दी। बख्तावर ने समझाया— बयार इधर से है। मानस गंध पा कुत्त चौंक रह हैं। उधर उत्तर पीपल के परे से होकर निकल चलो !

नाच से पहले राजा साहब के लिये विलायती की बोतल खुली थी। राजा ड्राइवर को मानते थे सो एक गिलसिया उसे भी भिजवा दी थी। चस्का लगा

तो ड्राइवर ऊपर से देसी और चढ़ा गया। वह नश के जोम में था। बोला— क्यों निकल चल उधर से ? क्या दवल हैं किसी के ? सीधे चलो जी देख कौन आता है। एक हाथ साले का भेजा निकाल द !

अरे मालिक झमेले से क्या फायदा ? —खुशामद से भदई ने कहा और वे लोग पीपल का चक्कर दे निकल गये।

जोहड़ के समीप बेड़ियों के डेरे की सिरकिया चांद छिप जाने के पश्चात् धु धली सी दिखाई पड़ रही थीं। बख्तावर के कहन से वे लोग चक्कर दे उत्तर पूरब से सिरकियों की ओर बढ़े कि कुत्त मानस ग ध पा चौंक नहीं। आहट बचाने के लिये यह लोग पजों पर बोझ दे चल रहे थे। बख्तावर ने ड्राइवर को भी जूते उतार हाथ में ले लेने क लिय सलाह दी। उस ने गाली दे कहा ड ते हैं क्या ?

सिरकिया अभी कुछ कदम दूर थीं कि एक कुत्ता गुर्रा उठा। उस गुर्राहट के साथ ही दूसरे कुत्त ज़ोर से भौंकने लगे। पुकार सुनाई दी— को है ? —सिरकियों के नीचे दिखाई दिया कि एक आदमी झप कर लेटे से उठ बठा। भदई के कान में बख्तावर ने धीरे से कहा— जाग गये झपट के लो !

जगन कुछ झिझका पर तु भदई और बख्तावर को झपटते देख रुका नहीं। ड्राइवर भी जूते की उलझन से ज़रा पीछे पीछे रह गाली देता हुआ बढ़ चला।

मनसा लाठी ले खड़ा हो गया और चिल्लाने लगा— आ खित उठ ! चोर ! चोर ! चोर ! भदई और बख्तावर ने मनसा और खित्त को गिरा दिया होता परन्तु उसके कुत्त आगे आ कर उलझ गये। एक बड़े से काले कुत्त ने भदई के पिंडली में दांत गड़ा दिये। बख्तावर की लाठी से कुत्त की कमर टूट जाने पर चिल्लाने के लिये उसका मु ह खुला ता टांग छूटी। लाठियाँ फड़ाफड़ बजने लग । स्त्रियों के कण्ठ की आर्त चिल्लाहट भी सुनाई पड़ रही थी। नसिया और उसकी ननद भी बांस ले लड़ने को आगे बढ़ आईं। चिल्लाती भी जाती थीं— हाय रे मार डाला रे ! मनसा का बूढ़ा बाप कुल्हाड़ी ले आगे बढ़ आया।

भदई उछल उछल कर पतरे से लाठी चला रहा था। पहले मनसा

और फिर खित्त गिर पड़े। बूढ़ा भी दोनों हाथों से सिर थाम बैठ गया। नसिया की पीठ पर एक लाठी जमा ड्राइवर ने कहा— यही है साली पकड़ लो को!

भदई ने नसिया को गर्दन से पकड़ उसके हाथ से घास छीन फेंक दिया। वह चिल्लाने लगी। ड्राइवर ने उसका आँचल उसके मुंह में ठूंस दिया। भदई उसे कंधे पर उठा ले चला। वह छटपटा कर हाथ पाँव चलाती भदई का सिर और गर्दन नोचती जा रही थी। भदई की पिंडली में लगे कुत्ते के दांत लगने से लगातार खून जा रहा था परन्तु वह रुका नहीं। उस के पीछे पीछे गाली बकता नसिया को चुप रहने के लिये धमकाता ड्राइवर चला आ रहा था। बख्तावर के कंधे पर भीतरी गहरी चोट बैठी थी। गपू और जगन के यों ही मामूली से खोंचे लगे थे। वे बख्तावर को सहारा दे लिये चले आ रहे थे।

रात को तीसरी पहर बीत चांद छिप चुका था चांदनी की शीतलता का स्थान अन्धकार की भयंकरता ने ले लिया। कोठी के बराम्दे के और भी घने अंधकार में केवल मैनेजर साहब के सुलगते सिगरेट का अंगारा दिखाई दे रहा था। भदई ने अधमरी सी शिथिल, क्लान्त नसिया मैनेजर साहब के सामने रख कर माथे का पसीना हाथ से पोंछ कर फर्श पर गिरा दिया। मैनेजर साहब के पुकारने से लालटेन आई। नसिया को भीतर कमरे में पहुंचा मुंह का कपड़ा निकाल दिया गया।

नाच के बाद नसिया को न पा राजा साहब का मन असफलता के अपमान की अनुभूति से चुटिया गया था। थकान और उदासी अनुभव होने लगी। ग्लानि दूर करने के लिये थोड़ी और लेने की सलाह मैनेजर ने दी। उसी जोम में राजासाहब ने गाली देकर कहा था— को पकड़ लाओ।

नसिया के आने तक वे आवेश और उन्माद में सोफे से कुर्सी और कुर्सी से पलंग पर उछलते रहे। जिस समय नुची-खुची मसली नसिया उन के सामने पेश की गई आवेश का ज्वार फिर ग्लानि की दलदल में परिणित हो चुका था। राजा साहब ने गाली दे कर उस से पूछा—'बड़ा मिजाज है?

उस अवस्था में भी बदहवास नसिया ने गाली का उत्तर गाली से दे छूने वाले का कलेजा चीर खून पी जाने की धमकी दी। राजा साहब के क्रोध

की निस्तेज होती अग्नि पर पेट्रोल पड़ गया— अभी इस हरामजादी को हमारे सामने कुत्तों से । बुलाओ साले जगन को ! रहमत का भी बुलाओ अभी यहीं हमारे सामने । ऐसे मिजाज हैं व चिल्ला कर दात किटकिटाने लगे।

जगन और रहमान के आने पर जा साहब ने नसिया को मजा चखाने के लिए दोना को एक एक बोतल देसी शराब देने का हुकुम दिया। हाफती हुई नसिया को दोनों बाहों से थाम वे लाग खींच ले गये।

× × ×

लित्त और उस का बूढ़ा बाप रोते हुये बिसतिया के थाने में पहुचे। अपने आदमी को ज़ख़मी कर उस की औ त भगा ले जाने की दुहाई उन्होंने थानेदार साहब के आगे दा। भा य से सरकिल इंस्पक्टर सा ब अकस्मात निरीक्षण (Surprise Visit) के लिये उसी दिन तड़क ही आ विराज मान हुये थे।

हवल्दार साहब ने फरियादियों को डपट कर थाने के बाहर प्रतीक्षा करने के लिये कह दिया था। वे अपने यहा की प रि ति जानते थे। रियासत के लिये लिहाज था। सरकिल साहब से छुट्टी पा दारागा साहब जो मुनासिब समझते करते। सरकिल साहब ने खबर पा फरियादियों को भीतर बुलाये जाने का हुक्म दिया। संगीन मामले में हवल्दार की उपेक्षा ने उन के मन में स देह उत्पन्न किया। मामले की तहकीकात के लिये वे दारोगा के साथ स्वयं घटनास्थल पर आये। इस के बाद भोजन और विश्राम के लिये थाने पर लौटे बिना, सीधे जमींदार साहब की कोठी पर पहुचे।

जिस समय सरकिल साहब घटनास्थल पर तहकीकात कर रहे थे इन्हें उन के आकस्मात पधार जाने का समाचार राजा साहब की कोठी पर पहुच गया। कोठी पर नसिया का कुछ पता न चला। तिस पर भी सरकिल साहब ने भदई और बख़्तावर को उन की चोटों के प्रमाण के आधार पर उन के घटना से सम्बन्धित होने के स देह म हिरासत में ले लिया। जगन और नसिया दोनों का ही कुछ पता न चला।

मनसा को चोट गहरी लगी थी। वह उसी दिन संध्या तक दम तोड़

गया। सर्कल साहब के हुक्म से उस की लाश जिला इस्पताल में सिविल-सर्जन के निरीक्षण के लिये भेज दी गई। आगे तहकीकात और रिपोर्ट की हिदायत कर सर्कल साहब दौरे पर चल दिये।

दो महीने तक नसिया की खोज होती रही! अदालत ने पुलिस को खोज के लिये अवसर (Remand) दिया। भदई और बख्तावर जिला जेल की हवालात में सड़ते रहे। मनसा के बूढे बाप, भाई और ननद को हर तीसरे दिन थाने मे हाजिर होने का हुक्म हो जाता। उन का आदमी मारा गया, घर की औरत छिन गई सो तो हुआ लेकिन हर तीसरे दिन थाने में दिन भर की हाजिरी में वे रोजी से भी गये। अपने ऊपर हुये अत्याचार का बदला ले पाने की प्रतिहिंसा के बदले वे अपनी जान बचा पाने के लिये व्याकुल होने लगे।

दारोगा साहब प्राय: कोठी पर आते-जाते और उन की खातिर होती। मामले के बारे मे राजा साहब को चिन्तित देख वे आश्वासन देते, इशाअल्ला सब ठीक हो जायेगा। आप का नमक गुलाम की नस-नस में भीज रहा है, आप को फिक्र किस बात की है?' '

दो मास से अधिक समय खोज पड़ताल के लिये देना अदालत ने स्वीकार न किया। आखिर मामला अदालत में पेश हुआ तो इस रूप में:—

मरहूम मनसा की औरत 'मफरूर नसिया' रियासत के नौकर जगन से फंसी थी। मनसा औरत पर कड़ी चौकसी रखता था। जिस रात राजा साहब के नौकरों ने नसिया का नाच कराया, जगन अपने दोस्तो को ले रात के तीसरे पहर नसिया को जबरन लिवा लाने के लिये गया। तरफैन मे मार-पीट हुई और नसिया जगन के साथ भाग गई।

राजा साहब की प्रजापालकता के कारण अभियुक्तों के लिये सफ़ाई के वकील खड़े किये गये। मनसा के बाप और भाई के पास वकील खड़ा करने के लिये रकम और हौसला न था। वे किसी तरह रोज़-रोज के सम्मनों से जान बजाना चाहते थे। वे अदालत में—"हा हुजूर" कह चुप हो गये।

अभियुक्तों के पहचाने जाने का अवसर आया तो दूसरे लोगों में मिलाकर खड़े किये गये बख्तावर को फरियादी पहचान नहीं पाये। भदई के लिये

उसमे जग जाने, सुडौल डील और पिंडली में लगे कुत्ते के दांत ने उस पर अपराध में भाग लेने की मोहर लगा दी।

सिविल सर्जन साहब की रिपोर्ट थी कि मनसा की मृत्यु लाठियो की चोट से ही हुई थी। जज साहब की दृष्टि में आक्रमणकारी भयंकर अत्याचारी और आततायी प्रमाणित हुये, जो कत्ल कर के दूसरे आदमी की औरत को भगाने के लिये गये थे। फरार हो गये अभियुक्त जगन के अपराध का दण्ड भी शायद उन्होंने गिरफ्तार हो जाने वाले अपराधियो को ही देना उचित समझा। जज साहब को असंतोष था कि पुलिस ने गवाही पहुँचने और खोज मे उतनी तत्परता से काम नही लिया जितना कि ऐसे संगीन मामले में उचित था। परन्तु अपराध प्रमाणित हो जाने में सन्देह न था। सन्देह रह गया था केवल बख्तावर के व्यक्तित्व के विषय में, उसे फरियादी गवाह पहचान नहीं पाये। इस सन्देह की छुरी ने बख्तावर के गले में पड़े न्याय की फासी के फन्दे को काट दिया। वह सर्वथा मुक्त हो गया। भदई के लिये केवल एक ही दण्ड था—फासी !

भदई जिला जेल की फासी की कोठरी मे बन्द था। एक दिन मैनेजर साहब उसे दर्शन देने आये। भदई की प्राण-रक्षा के लिये राजा साहब की चिन्ता का आश्वासन दिलाया और विश्वास दिलाया—"हजार, लाख जो भी खर्च हो जाय हाईकोर्ट मे मुकदमा लड़ कर उसे छुड़ाने मे कसर न छोड़ी जायगी।"

भदई जेल की रूखी सूखी, कच्ची-जली खाकर भी अपनी कसरत पूरी कर लेता और दिन रात राम-नाम जपता और राम-नाम के गीत गाता। उसके मन मे पश्चात्ताप की कलख न थी। उसने कौन पाप किया था जिसके लिये दुखी होता ? पराई औरत की ओर कभी बदनिगाह नहीं की। पराये सोने को सदा मिट्टी समझा। मालिक का नमक खाया तो उसे हलाल किया। दुनिया नहीं देखती तो न देखे, राम जी तो सब देखते हैं ! उसे चिन्ता थी केवल अपने बिना मा के बेटे को। वह क्या और कैसे खाता, ओढ़ता होगा ? परन्तु विश्वास भी था—राम जी सब देखते हैं। पत्थर मे बन्द जीव की भी जो चिन्ता करते हैं ; वे क्या अपने सेवक के बेटे की सुध न लेंगे।

सेशन जज ने फैसला लिखने मे कुछ ऐसा जहर भर दिया था कि हाई-कोर्ट में भदई की ओर से की गई प्राण-भिक्षा (अपील) उस के अपराध की गुरुता के कारण ठुकरा दी गयी।

× × ×

जेलर ने भदई को समाचार दिया—"तुम्हारी अपील मंजूर नहीं हुई।"

"जो राम जी की इच्छा"—भदई ने उत्तर दिया।

उस से पूछा गया—"किसी को मिलना चाहते हो?" उसने अपने पुत्र को देखने की इच्छा प्रकट की।

स्तब्ध और त्रस्त बालक को सींखचों में बन्द पिता के सम्मुख लाकर खड़ा कर दिया गया। वह पिता के वात्सल्यमय हाथों के स्पर्श से दूर था परन्तु पिता की दृष्टि बालक के उगते कोमल अंगो का स्पर्श कर रही थी।

कल्लू रो पड़ा। भदई की आखो से भी आसू टपक पडे। अपने को सम्भाल कर उसने कहा—"लल्लू रोते नहीं······'मर्द बच्चे कहीं रोते हैं ·····? जियो बेटा······! राजा साहब का हाथ तुम्हारे सिर पर है। राम जी उन्हे चिरंजीव करें। बेटा, राजा साहब के चरणों में रहना। जिस का खाओ उस का हलाल करना। यही सब से बडा धर्म है। मालिक को जानो। नमक हलाल करो। जाओ बेटा······सुखी रहो!

पुनिया की होली

पुनिया डाकखाने के बडे बाबू जी के यहा बच्चा खिलाने पर है। सुबह मुंह-अंधेरे जा वह नाश्ता तैयार करने मे मदद करती है। साहब को दफ्तर जल्दी जाना होता है। कहने को दस बजे जाते हैं, पर पुराने जमाने के नौ ही समझिये। और फिर जाडे के दिन। रात साढे-आठ, नौ से पहले मुन्ना सोता नही; उससे पहले पुनिया घर कैसे लौटे?

दिन मे एक डेढ़ घटे की छुट्टी उसे बहू जी देती हैं कि अपने घर रोटी सेंक, बच्चो को खिला-पिला आये। डेढ़ के बजाय वह तीन, कभी चार घण्टे लगा जैसे-तैसे दिन का काम समेट पाती है। तब मुंह में चुटकी भर तम्बाकू दबाये, गली-मुहल्ले के लोगों से बतियाती, धीरे-धीरे वह लौटती है। बहू जी नाराज तो होती ही हैं। रोज ही चुडैल को निकाल देने की धमकी देतो हैं परन्तु पुनिया जानती है, सब ऐसे ही चलता है। बहू जी ने लड़के को सम्भाल पायेंगी, न उसे निकाल सकेंगी। वह कुछ मुंह लगी भी है। बड़े आदमियो की सेवा करना उसके यहा का पुश्तैनी पेशा है। बात करने का सलीका है। बड़े आदमियो का रंग पहचानती है। मुन्नू को वह पल भर को छोड़ देगी। वह दौड़ कर मा से धमा-चौकड़ी करने लगेगा। बहू जी डाटेंगी—"तू लड़के को एक मिनट नहीं सम्भाल सकती, मर गई। मुझे दो मिनट काम नहीं करने देगी? यह धोबी की धुलाई पहाड-सी पडी है, इसे कौन सहेजेगा?"

आखें फैला, पतली कमर को जरा हिला, पुनिया कहेगी—"हाय-हाय, कैसी हैं; पहर भर बाहर खेल लड़का पल भर को पास आया कि लगीं डाटने

उसे ! जरा सिर पर हाथ नहीं फेर देंगी । बच्चे का जी छोटा हो जाता है ! इन्हे तो अपने काम मे ही फुरसत नही ।" धोबी की धुलाई के सफेद टीला के बीच बैठी बहू जी मुन्ना की धमा-चौकडी पर रीझने लगी और पुनिया आधे घण्टे को फिर गायब ।

बहू जी ने फिर निकाल बाहर करने की धमकी दी और दिखाने को, पुनिया के रंग उड़ गये । फ्राक मुन्ना के सामने डाल, आखे घुमा, इतरा कर बोली—"मुन्ना कह दो, हम नही पहिनेंगे यह सब पुराने कपडे ! घर मे रोज सैकड़ो खर्च हो जायंगे । एक बच्चा है, उसके लिये कपडे नही !" और जब बहुत तनातनी हो जायगी, तो वह बहू जी की आड कर कह देगी, "तो क्या है, निकाल दो ! भूखे-बिलखते बच्चा को यही डाल जाऊंगी, मेरा क्या है ···?" हम उम्र है न ? इस से गली मुहल्ले की रहस-वार्ता समीप बैठ, दबी जुबान मे करती है और दूर के सहेलपने का दावा भी है ।

रंग सांवला है जरूर, पर चेहरे पर चिकनाई है । बहू जी मौके-बेमौके उस के मैले रहने पर फटकार कर अपनी धुली धोती, पेटीकोट और जम्पर दे देती है । अपने मुहल्ले मे लौटते समय कई ओर से मसखरिया, बोली-ठोली और दुचकारे उसे सुनने पडते है । किसी पर आखें दिखाती, किसी पर आठ दबाती, बल खाती वह घर पहुँचती है ।

घर क्या ? कोठरी है । कोठरी भी ढङ्ग की नही, जैसे घरौंदा हो । जैसे घर को झाड़-बुहार कर कूडा बाहर फेंक दिया जाता है, वैसे ही सम्पन्न नागरिक समाज की झाडन-बुहारन भी मुहल्लों और शहरों के बाहर फेंक दी जाती है । इन्हे 'स्लम्स" कहते हे । इन स्लम्स मे रहने वाले भी सभ्य मनुष्य-समाज की दृष्टि में फल से उतार दिये गये छिलके की भाति बेकद्र होते हैं । अपनी इस कोठरी तक पहुँचते-पहुँचते पुनिया की सरसता और मुस्कराहट समाप्त हो जाती है । उस की छः बरस की लड़की धूल से भरी जटायें फैलाये, कन्धो पर एक बेबटन का झगुला लटकाये उसे देखते ही पुकार बैठती है—'अम्मा, भूख !' और उस का चार बरस का लड़का झगुले के बजाय बेबटन की फतुही पहने, बहती नाक को ऊपर खींचता हुआ, बहिन से पहले खाना पाने के लिये दौड़ कर मा का अंचल थाम, बार-बार 'रोटी-रोटी दे ?' चिल्लाने लगता है ।

घर के भीतर सवा बरस की दूसरी लड़की है, जमीन पर घसिटती हुई ।

इतना समय पुनिया के घर से बाहर रहने में वह उस के आने तक दो-चार जगह सफाई करने की आवश्यकता पैदा कर देती है। पुनिया क्या जानती नहीं, सफाई किसे कहते हे ? साहब के कमरे में फर्श की दरी पर अगर कोई तिनका या धागा पड़ा हो तो वह उठा देती है। और अगर उन के छः जोड़े जूतो मे से किसी एक पर धूल पड़ी हो, तो बहू जी को सुना कर पहाडी नौकर गुमान को सफाई का कायदा न जानने के लिये डाट देती है। मुन्ना को वह बेबी सोप छोड़ दूसरा साबुन नहीं लगा सकती। अगर कभी गुमान जल्दी मे उसे सनलाइट की टिकिया थमा दे तो उस के माथे पर बल पड़ जाते हैं। मुन्ना की ऊनी जुराब मे एक छेद हो जाय, तो वह बहू जी को सुना देती—"हा, मुन्ना की जुराब फट रही है, हम नही जानते। ऐसी सर्दी पड़ रही है। आप का तो जरा फिकर ही नहीं, हा!"

मुन्ना के बदन पर पफ के बिना पाउडर लगाना उसे अच्छा नहीं लगता। 'जानसन' के पाउडर की जगह अगर 'कस्सन' का पाउडर आ जाय, तो त्योरी चढ़ा कर कह देती है—"हा, सब कंजूसी मुन्ना के लिये ही तो है।" सन्तरा चाहे बाजार मे चवन्नी का एक मिले! वह ऊंचे स्वर मे सुना देती है, बच्चे को फल नही मिलेगा तो कब्ज नहीं हो जायगा! और उस के अपने बच्चे बदन पर धूल लपेटते हैं! वह उन्हे नहला नही पाती। दो घड़ी को घर आती है, तो दो रोटी सेंक उन के पेट मे डाले कि नहलाने बैठे?

उस का मर्द या तो चारपाई पर पडा कराहता रहता है या कोठरी के बाहर दीवार के सहारे बने चौतरे पर दीवार से पीठ सटाये पुनिया के आने की प्रतीक्षा में चिलम पीकर खांसता रहता है। बाबू साहब के यहा से लौट, बड़बडाती हुई पुनिया बच्चे को धुलाने और जगह साफ करने मे लग जाती है। धनकू को सुना कर वह अपनी किस्मत से लडती है—"इतना तो नहीं होता कि बच्चों को ही संभाल ले। दिन भर हाड़ ताड़ते है और घर आये कि चूल्हा ठण्डा, न घर मे उजेरा।"

धनकू अंटी में से दियासलाई का बक्स निकाल उसकी ओर फेंक देता है कि मिट्टी के तेल की ढिबरी जला दे। आजकल के जमाने मे एक पैसे का तेल मुश्किल से दो दिन चलता है इसलिये कोठरी में प्रायः अंधेरा रहता है। धनकू सोचता है, मिट्टी के तेल की दूकान पर घण्टों खड़ा रह कर पैसे का तेल ला,

उसे फूंक देने से क्या फायदा ? उस से तो अच्छा उस पैसे का तम्बाखु लाकर दो दिन काट सकता है पर पुनिया नहीं मानती, ऊंचे स्वर में चिल्लाने लगती है—"इसे तम्बाकू की पड़ी है। अंधेरे मे बच्चे डरते है, सो नहीं सूझता !" धनकू का मन ग्लानि से भर जाता है। सवा बरस से आतशिक के जोर के कारण उस के हाथ पैर नहीं चलते ! इससे जोरू की बात उसे यों सुननी पड़ती है। दस रुपया महीना क्या कमा लाती है, जैसे मर्द को खरीद लिया है ! मुंह जोर ऐसी ही रही है कि बात-बात पर लडती है। धनकू के लिये जब अपनी मर्दानगी का अपमान सहना असम्भव हो जाता है, तब वह थप्पड से, लात-घूसे से अधिकार को स्थापित करने की चेष्टा करता है। उस समय बच्चे रो पड़ते हैं ; पुनिया मार की पीडा से और मन के दुख से खूब चीख-चीख कर रोती है , अपने मर जाने की प्रार्थना दैव से करती है और साथ ही धनकू को सड़-सड़ कर मर जाने का श्राप भी देती जाती है। अपने सभी प्रकार से असन्तुष्ट जीवन मे अपनी मर्दानगी के प्रभाव वे रोती हुई पुनिया को देख, धनकू को कुछ तो संतोष होता है, आखिर तो वह इस स्त्री का मर्द है, मालिक है , ससार मे उसके पास और कुछ न सही, एक औरत तो है ! उसके पाव जब बुरी तरह पिराने लगते हैं तो बनिये की दूकान से धेले का तेल पैसे में उधार लाकर उसे गरम कर पुनिया से आधो रात तक मालिश करवा सकता है।

पुनिया दस रुपया महीना पाती है सही परन्तु अढाई रुपया हर महीने आगा ले जाता है। उस से पिछले जाडो में पुनिया ने पाच रुपये लिये थे। उस से पहले भी रुपया-दो मौके-मौके लेती रही थी। सूद मिला कर वे बीस हो गये। असल न सही, सूद तो आगा हर महीने लेगा ही। ऐसे ही बनिये का कितना देना हो गया था ! उसने पुनिया की चादी की तमाम चीज-बस्त रखा ली। अब पाव की अंगुलियो में गिलट के बिछुए भर रह गये हैं। उसके बाप ने कानो मे चादी के भारी-भारी करनफूल बनवा कर दिये थे पर वे तो कभी क बनिये के यहा पड़े थे। सूद बढते-बढते जब छुडाने की उम्मीद न रही तो पुनिया ने वे दे ही डाले। अब कानो में वह कागज का डाट बना कर लगाये रहती है कि छेद बन्द न हो जायं। कभी तो कोई चीज कान के लिये वह बनवा ही पायेगी। अभी तो वह जवान है।

पुनिया के बच्चे भूखे रहते हैं, पर वह क्या करे ? अपने मन को वह समझा लेती है। धनकू के लिये वह क्या करे ? जो कुछ खुद पाती है, उसे

भी देती है। परन्तु बच्चों को वह कैसे समझाये। उन का भूख से ठुनकना उस से देखा नहीं जाता। दोपहर में या रात मे घर लौटते समय कोई पूरी-पराठा या सब्जी-तरकारी मौके से हाथ में लिये चली आती है कि बच्चो को हो जायगा। उसके अपने लिये पैसे का चबैना बहुत और कभी-कभी वह भी नहीं। बच्चों के लिये रोटी भी सेक देती है तो 'मरे' नमक या गुड के लिये जिद् करने लगते हैं। इसी से पुनिया घर लौटने से पहले दो कंकड़ी नमक या मौके से छटाक-आधी छटाक चीनी पुड़िया मे ले लेती है। कोई चोरी के ख्याल से नही; ऐसे ही बच्चो को बहलाने के लिये। उन मरो का जी भी तो सभी कुछ खाने को करता है। और फिर इतनी-सी चीनी का क्या है? चार आदमी चाय पीते हैं, तो इतनी तो प्यालो मे रह जाती है लेकिन बहू जी यह सब ताड़ती न हों सो बात नहीं? पर बेशर्म से क्या कहे? उसकी नीयत ही ऐसी है।

हर महीने वह बहू जी से दो-अढाई पेशगी लेती है। वैसे पाच उधार के भी हो गये हैं। बहू जी हर महीने कह देती हैं, अब पेशगी कौड़ी नहीं दूंगी और पिछला काटूंगी, परन्तु समय आने पर वह प्रतिज्ञा नहीं ठहरती। ऐसे ही वह मार्च की पन्द्रह तारीख को हाथ जोड़ फिर दो रुपये पेशगी ले गई। वे पाच ही दिन मे उड़ गये। अब फिर जरूरत थी करती क्या, बरस-दिन का फगुई का त्योहार था। जब धनकू दूसरों के दरवाजे बैठ कर कुल्हाड़ पी आता है, वह खुद दूसरो के यहा ज्योनार में जाती है, तो अपना मुंह कहाँ छिपा ले। उन्नीस तारीख को फिर उसने बहू जी की खुशामद कर अठन्नी और ली, पर वह भी उड़ गई।

पुनिया के घर मे अनाज के नाम पर दाना नहीं और दोनों बच्चे होली पर पूड़ी खाने की रट लगाये थे। हाते मे घर-घर मे तेल के पकवान बनने की महक उठ रही थी तो उसके बच्चे ही क्या करते? उन 'मरो' का भी तो जी है! बहू जी से वह कुछ मागे, तो किस मुंह से? नहीं तो फिर करे क्या? धनकू पिछली रात, दो रुपये पेशगी लाने के लिये उससे लड़ता रहा।

× × ×

मुन्ना के बीसों खिलौने थे। टूटने से पहले नये आ जाते। जगह-जगह पैरो में दब जाते थे, इस से बहू जी ने एक आलमारी में भरवा दिये थे।

खिलनो के साथ ही मामा के दिये चादी के छोटे छोटे कटोरी-गिलास भी थे। उन्हे पटक-पटक मुन्ना ने बेकाम कर दिया था। वे भी उसी आलमारी में पडे थे। बहू जी का ख्याल था, जरा सयाना हो जाय, नये सिरे से उसके लिये कुछ बनवा देंगे। पुनिया रोज ही उन चीजो को देखती थी, पर कभी उसे कुछ खयाल न आया। बनी हो तो, बिगड़ी हो तो, जिसकी माया है उसी की है। और मुन्ना की चीज पर वह कैसे नीयत डिगा सकती थी? पर उस दिन उस मुसीबत मे मन उसका हाथ मे न रहा। चॉदी का एक बडा-सा झुनझुना था जिस में चादी की जंजीर लगी थी। पुनिया ने सोचा, कम से कम तो होगी पाच रुपये भर। रामजस के यहा तीन रुपये मे रखा दे! पहली तारीख को महीना मिलते ही छुड़ा लेगी और जहा की तहा लाकर रख देगी। किसी को पता भी न चलेगा! किस्मत ने चक्कर दिया कि पुनिया ने जंजीर अंटी में खोस ली।

रात चलते समय उसने गिड़गिड़ा कर कहा—"बहू जी कल बरस-दिन का त्योहार है, एक दिन की छुट्टी लेंगे। अगले दिन काम की अधिकता का अनुमान कर बहू जी ने बिगड़ कर कहा—"और क्या, जिस दिन काम का बोझ आ पडेगा, उसी दिन तो छुट्टी चाहिये!" पुनिया जिद् कर रही थी, उन्हे मानना पड़ा।

किस्मत की बात। अगले दिन सुबह ही मुन्ना ने अपनी लकड़ी की बिल्ली पटक-पटक कर तोड दी। दूसरा खिलौना उसके लिये निकालने को बहू जी ने आलमारी खोली, तो चादी के कुटे-पिटे बेडौल बरतनों की ओर ध्यान गया; उन्हे गिनने लगीं। देखा तो झुनझुने की जंजीर गायब! उन्होने गुमान से पूछा। पुनिया पर उन्हे एतबार था। खाने-पीने की छोटी-मोटी चीज होती तो एक बात थी। पर रुपये पैसे और जेवर के मामले मे पुनिया का हाथ सच्चा था। बीसो बेर आलस्यवश जेवर और रुपये छोटी तिजोरी मे रखने के लिये उन्होंने पुनिया को दिये थे और कभी कोई बात नहीं हुई। बहू जी ने गुमान से पूछा तो वह साफ कसम खा गया। बहू जी ने डाटा—"तो क्या फिर जंजीर को आलमारी निगल गई? मै कुछ नहीं जानती! अभी निकाल कर दो नहीं तो पुलिस के हाथ पकड़वा दूंगी!"

गुमान को गुस्सा आ गया। एक तो वह 'पहाड़ी ठाकुर' ठहरा, दूसरे उसने चोरी की नहीं थी। अलबत्ता पुनिया को बीस दफ़े छोटी-बड़ी चीज़

की चोरी करते उसने देखा था। वह लपकता हुआ घर से बाहर चला गया। पास की पुलिस की चौकी मे था उसके गाव का सिपाही सुजानसिंह। गुमान ने सुजानसिंह के सामने अपनी व्यथा रो कर सुनाई और उस के साथ दूसरे सिपाही को ले पहुँच गया पुनिया के घर।

रात बाबू जी के यहाँ से आते ही धनकू ने पूछा था—"कुछ लाई?" पुनिया ने उत्तर दिया, "लातीं कहाँ से? मेरा कुछ गड़ा रखा है वहा!" दोनों में बहुत रात गये तक झगडा होता रहा।

पुनिया ने सोच लिया था, जंजीर धनकू के हाथ नहीं देगी। वह मुआ उसे कहीं बेच डाले, तो पाच से कम क्या मिलेंगे। और कहीं गिरवी रखेगा, तो भी तीन-चार से कम नहीं लेगा। जंजीर उसकी अपनी थोड़े ही है? वह रामजस से केवल दो लेगी और पहली दूसरी तारीख को बहू जी से महीना मिलते ही छुड़ाकर फिर जहाँ की तहा धर देगी। जिसकी चीज़ है उसी की रहे, उमे क्या लेना है।

बरस-दिन का पर्व था सुबह उठते ही धनकू फिर उमे बाबू जी के यहा जाकर कुछ माग लाने के लिये विवश कर रहा था। वह उस की बात अनसुनी कर झाड़ने बुहारने में लगी। बच्चो ने उठते ही रंग और पूड़ी के लिये जिद्द शुरू की। उन्हे वह समझा रही थी—'अरे.......दिन तो निकल लेने दो!' वह सोचती थी, अभी थोड़ी देर में रामजस के यहा जायगी।

इतने में आ गया गुमान दो सिपाही लिये।

धनकू कुछ समझ न सका। पुनिया ने समझा तो परन्तु उसे विश्वास न आया कि बहू जी ऐसा कर सकती हैं। गुमान ने कहा—"वह जंजीर कहाँ है?"

"कैसी जंजीर?"—साहस कर आँखें दिखा पुनिया ने कहा, "हम क्या जाने कैसी जंजीर? हम क्या चोर हैं? हमेशा से हम तो बड़े आदमियो के यहा काम करते आये हैं।" कोई चोर हैं क्या हम?.......बड़े आये।"

पुलिस वाले की धौंस पर गुमान ने खुद ही कोठरी की तलाशी लेनी आरम्भ की। चीथड़े पलट ड ,ले। इधर देखा, उधर टटोला, खपरैल में खोंस हुई एक पुड़िया उसने खींच ली और पुनिया चीख़ पड़ी।

सिपाही पुनिया को चौकी चलने को कह रहे थे और वह उनके पावो में लिपट-लिपट कह रही थी—"सिपाही जी, यह जंजीर हमे बहू जी ने खुद दी है, चल के पूछ लीजिये।"

धनकू कापता हुआ एक ओर चुप खड़ा था। सारे अहाते के लोग चारों ओर गोल बाधे भयभीत आखों से तमाशा देख रहे थे। सब यत्न कर पुनिया हार गई। बरस-दिन के त्योहार के दिन सिपाही उसे थाने लिये जा रहे थे। बच्चे उसके चीख रहे थे।

लोग कह रहे थे, बुरी नीयत का यही फल होता है। कोने का हलवाई कह रहा था, साली का मिजाज नहीं मिलता था? असल बात तो यह थी ''। आते-जाते उसने पुनिया को कई दफे कहा था—"देखो, दही-रबडी खाओ तो ले जाया करो।"

आँखें चढ़ा पुनिया ने उत्तर दिया था—"देखो लाला, हम बाबूजी से कह देंगे, हाँ ''।"

"तो हम कुछ कहते हैं?"—उत्तर दे लाला चुप रह गये थे।

कोने के पनवाड़ी ने रोती हुई पुनिया को सिपाहिया के साथ जाते देखा तो सोचा—रही हरामजादी ज़रूर बदमास। कै बेर पत्ती माग माग के ले गई। और जब उसने पूछा—"तो कहो फिर क्या हाल है ''?" तो झमक कर निकल गई, 'ठाकुर तुम तो बडे वैसे हो।" और अब चोरी में पकड़ी गई न? किसी को कुछ गिनती थोड़े थी। हराम का खाने वालो की यही बात होती है।

× × ×

घर लौट गुमान ने अभिमान से सब बात कह सुनाई। बहूजी काप उठीं। चिल्लाकर उन्होने कहा—"मरा तू ऐसा लाट साहब हो गया! किसने कहा था तुझे यह पंचायत करने को? जंजीर चली गई थी तो तुझे क्या? तेरा क्या गया था? बड़ा सिपाही बनता है।"

आँखो मे आँसू लिये वे बाबूजी के पास पहुँचीं। बालो और मुँह पर रंग मले वे भूत बने थे। सुनकर घबरा गये! बोले—"तो फिर?"

रोकर बहूजी ने कहा—"तो फिर क्या, जल्दी जाते क्यो नहीं थाने?

बरस-दिन के पर्व के दिन उसके बच्चे बिलखते होंगे। कैसी हाय पड़ेगी······· थाने जाकर कह दो, जंजीर उसे हमी ने दी थी।"

बाबूजी डाकखाने में बड़े बाबू हैं सही पर पुलिस के नाम से तो डर लगता ही है। बाबूजी की बात भी कैसे टालते·······? तिस पर ग़रीब की हाय का डर। जल्दी-जल्दी मुँह धोया, हजामत बनाई और साफ़ कपड़े पहिन, गुमान को साथ ले चौकी पहुँचे। वहाँ पुनिया एक तरफ़ बैठी लम्बी साँसें ले रही थी और सिपाही ढोलक बजाकर गा रहे थे—"फागुन में चलत फगुई बयार ······· ।"

बाबूजी ने हवलदार साहब को समझाया।

पुनिया जजीर लिये घर पहुँची तो विस्मय से देखते लोगों की ओर पीठ किये अभिमान से कह रही थी—"लो, देख लिया।"

बहूजी की नाराजगी की हद नहीं थी। उन्होंने कहा—"नमकहराम है, चोर है, बदमाश है और उसे कभी घर में रखेंगे नहीं।" पुनिया कुछ बोलती ही नहीं। मुन्ना को खूब बना सँवार कर, गोद ले बाहर जा बैठती है।

अहाते के लोग समझते न हों सो बात नहीं। जब पुनिया कोने पर से गुजरती है, हलवाई और पनवाड़ी आपस में बोली देते हैं—"हा भाई, बड़े-बड़े बाबू! हम जैसों को कौन पूछता है?"

हवाखोर

शरीर के भीतरी भागो मे जो घाव पैदा हो जाते है, एक्सरे से उन की जॉच-पड़ताल कर इलाज की व्यवस्था की जाती है। जिन्दगी मे कुछ घाव ऐसे भी लगते है जिन्हे छिपाना ही पड़ता है। इन घावो का इलाज, सहने का अभ्यास ही है!

समाज के अत्याचार से पीड़ित व्यक्ति एकात खोजने लगता है। समाज से दूर भाग कर वह समय की शरण लेना चाहता है। समय का मरहम ही उसके घावो को भरकर उन पर अंकुर ला सकता है। उसे एकान्त ही अच्छा लगने लगता है। केवल असामाजिक बनकर ही वह समाज से अपना असहयोग और मूक असंतोष प्रकट कर सकता है।

वह घटना घटी थी नवम्बर के अन्तिम सप्ताह में। दिसम्बर की चौबीस तारीख से यूनिवर्सिटी बडे दिन की छुट्टियों मे, मुहर्रम वगैरह मिलाकर, जनवरी के पहले सप्ताह तक के लिए बन्द हो गयी। नारायण यूनिवर्सिटी मे लेक्चरार है। यौवन की पहली अवस्था मे उत्तरदायित्व की उपेक्षा उमङ्ग का ही जोर रहता है। नारायण को भी प्रति मास वेतन के रूप मे मिलने वाले रुपयो की अपेक्षा अनेक छुट्टियो का ही महत्व अधिक जान पड़ता है।

लोगो की मर्मभेदी दृष्टि से अपने जख़्मी हृदय को बचाने के लिए उसने किसी तरह कराहते हुए एक मास बिताया था। छुट्टिया होते ही वह जाडे के उजडे नैनीताल मे एकान्त ढूंढने चल दिया।

पृथ्वी के साधारण धरातल से हजारों फुट ऊँचे उठे पहाड़ों की असाधारण, उत्तेजक और स्फूर्तिदायक वायु और प्रकृति के अगणित प्रहारों के बावजूद अडिग और उत्तुंग बने रहने वाले शिखरों ने उसे समझाया—प्रहार सहकर संसार में सीधे खड़े रहना ही मनुष्यत्व है।

मानसिक परिवर्तन आ जाने पर उसने शिथिल होते जाते जीवन को संभालने की चिन्ता आरम्भ की। गिरता स्वास्थ्य सुधारने का निश्चय किया। पहाड़ की प्राण-पोषक वायु मे नियमित भोजन, स्वाध्याय और व्यायाम, प्रातःकाल दूर तक पहाड़ पर चढ़ना और सन्ध्या समय किराये का घोड़ा ले झील के चारों ओर चक्कर लगाना।

गोविन्द अपने घोडे पर जीन-साज कसे मल्लीताल पर ग्राहकों की प्रतीक्षा मे धूप सेंका करता था। घोडे के सामने थोड़ी घास डाल देता या ग्राहक के न आने पर घोड़े की मलाई-दलाई करने लगता। घोड़ा चढ़ती उम्र का था। खाने को पर्याप्त मिलता और परिश्रम साधारण। पुट्ठे भरे हुए थे। लाल-बादामी रङ्ग के रोयें पालिश से सुनहरी झलक मारने लगते। घोडे का रूप-रङ्ग और उठान सहज ही शौकीन ग्राहकों को खींच लेती। गोविन्द सवार के पीछे-पीछे भागता चलता। घोड़े वाले प्रायः चढ़ाई पर स्वयं थकान से बचने के लिये घोडे की पूंछ का सहारा लिये रहते हैं। गोविन्द घोड़े को थकान से बचाने के लिये चढ़ाई में घोड़े की पूछ पकड़ स्वयम सहारा नही लेता। घोड़े की ममता अपनी थकान से प्रबल थी · वह जीवन का अवलम्ब था।

नारायण सवार नहीं था। सवारी सीखना चाहता था। गोविन्द के घोडे ने उसे आकर्षित किया। प्रति सन्ध्या सवारी के लिये उसे नियत कर लिया। गोविन्द साँझ को पाच बजे नारायण के लिये घोड़ा हिमालय होटल मे ले आता।

दूसरे मरियल घोड़ों के मुकाबिले में गोविन्द के घोड़े की तारीफ न करना असम्भव था। नारायण ने भी उसे सराहा। सन्तोष और अभिमान से गद्गद् स्वर में, घोड़े के नरम नथनों पर हाथ फेर कर गोविन्द ने उत्तर दिया—"तो क्या हुजूर ऐसे ही है। अपनी जान से बढ़कर इसकी सेवा करता हूँ। एक बकत अपने फाका भी हो जाय तो इसे भूखा थोडे ही रख सकता हूँ। शीजन मे अढ़ाई-तीन रुपया कमा देता है। तब इसे रोज आध पाव घी देता था। अब

भी डेढ़-दो कमाता है तो बारह आने रुपया इसे खिला देता हूँ। आठ आने का आजकल दो सेर दाना, एक छटाक घी और आध पाव गुड़। बाबू जी, तभी यह ऐसा बना है। ।''

घोड़ा भी जैसे गोबिन्द की बात समझता था। पक्की सड़क पर अपने सुमों की ताल दिखाने के लिये मटक मटक कर चलने लगता। सवार की इच्छा न होने पर भी, बल्कि उस के भय को समझ खामुखाह तेज दुलकी या सरपट दौड़ने के लिए मुंह मारने लगता।

तीन जनवरी की रात वर्षा के कारण भीषण सर्दी हो गई। नारायण रजाई पर दो कम्बल डाल, सिकुड़ कर लेटा हुआ एक पुस्तक पढ़ रहा था। होटल की टीन की छत पर बर्षा की बूंदो की गूंज सहसा कड़कड़ाहट मे बदल गई। समझा, ओले हैं। इस विचार से ही सर्दी ज्यादा मालूम होने लगी! बत्ती बुझा छत पर ओलों के मार की गूंज मे आतंक मिलो एक शान्ति की अनुभूति से वह आँखें मूँदे लेट गया। आँखें मूंदे ही सोच रहा था—प्रकृति अपनी सब शक्तियो से मनुष्य के प्राणो पर निर्मम आघात करती है फिर भी मनुष्य अपने जीवन की रक्षा करता ही है। ऐसे ही समाज की परिस्थितियाँ मनुष्य के मनुष्यत्व को हर कदम पर प्रताडित करती हैं फिर भी मनुष्य बने रहने का यत्न तो करता ही है · । उसे नींद आ गयी।

दिन चढा पर सूरज छिपा ही रहा। ठहर-ठहर कर वर्षा हो रही थी। नारायण बल्लम ले पहाड की चढ़ाई की कसरत के लिये न जा सका। दिन भर खिड़की के सामने बैठा, झील की ओर मुख किये कभी वह पुस्तक के पन्नों को देखता और कभी पहाड के ढलवानो और झील पर लुढकते रुई के गोलो जैसे बादलों को। नारायण मन की उदासी मे उपन्यासो की रोचकता से खीझकर एक विचित्र-सी पुस्तक साथ लिये आया था और पढ रहा था··· ··· सौन्दर्य की धारणा उससे प्राप्त होने वाले संतोष और तुष्टि पर निर्भर करती है।····उसका तर्क कहने लगा इसका अर्थ हुआ, मनुष्य के हृदय की सम्पूर्ण विशालता उपयोगिता पर निर्भर करती है · ·· 'यानि मनुष्य मूलतः स्वार्थी है। चोट चुपचाप सहने के अभिमान से भरा उसका मन इस पार्थिवता को स्वीकार करने के लिये तैयार न था।

दायें हाथ के अंगूठे को पुस्तक के पन्नों में और दूसरे हाथ के अंगूठे को दांतो

ाये वह अँधमुंदी आँखो मे पुस्तक की अपेक्षा अधिक रुचिकर, खिडकी
ाई देने वाले दृश्य को देख रहा था। सहसा कोहरा झील की सतह पर
ा। पहाड की ढाल पर वृक्षों की आड से दिखाई देने वाले, बँगले
ाँ, झील की विस्तृत हरी नीली सतह और लहरों के थपेड़ो से हिलती
छोटी नावें सब एक धूमिल पर्दे में अदृश्य हो गयीं। होटल के सामने
त समीप गिरजे की चोटी और सडक भी उसी पर्दे मे छिप गयी। फिर
कोहरा डाकखाने के समीप के गलियारे से नीचे लुढक चला।
ाश्चिम मे काठगोदाम के मैदान मे जमे बादलों की ओट मे सूर्य की
बादलो का पट चीरकर झाकने लगी। वे वैसी ही मोहक और स्फूर्ति-
थीं जैसी चिक की ओट मे झाकने वाली सहमी हुई आखे। पूर्व मे
बरफ का उज्ज्वल हीरक मुकुट पहने चोना-चोटी उभड़ आयी। सामने
ाल पर लाल छतें दिखाई देने लगीं, उन पर आधी पिघली बरफ और
र काले दिखाई पडने वाले वृक्षो की टहनियो पर लदी बरफ पश्चिम
ोर उतरते सूर्य की, बादलो से लुक-छिपकर आने वाली किरणों के स्पर्श
न्दूरी और नीली धूमिल दिखाई देने लगी। हल्की-हल्की हवा चलने
। वृक्ष झूमने लगे और उनकी शाखाओं से बरफ झडने लगी। फिर
ही सब कुछ स्पष्ट हो गया। झील की हरी-नीली सतह वायु के थपेडो से
ल करने लगी। झील के इस छोर से उस छोर तक फैली लहरें, एक
छे एक, समान अन्तर से, मल्लीताल से उठ तल्लीताल की ओर दौड़ने
जैसे झील के विस्तृत केश-पाश की लहरो पर कङ्घिया चली जा रही हो!
अपने शरीर पर कम्बल लपेटते हुए नारायण सोचने लगा—और यदि
जाय कि इस सब सौन्दर्य का कोई पार्थिव मूल्य नहीं, इस से किसी का
नहीं भरता, तन नहीं ढकता इसलिये यह सौन्दर्य ही नही!" ......
! कहकर उसने पुस्तक को नीचे नमदे पर पटक दिया।

झील-किनारे झूमते वृक्षो के नीचे सूनी, भीगी, बरफ से चित्रित सडक
ोबिन्द अपने सुडौल घोड़े पर चौका भरते होटल की ओर चला आता
ाई दिया। उस सर्दी और हवा मे भी गोबिन्द का सीना उभरा हुआ
। घोडे और सवार की वह निर्भीक मुद्रा नारायण को बहुत भली मालूम
। उसे तेजी से अपनी ओर आते वह एकटक देखता रहा, क्या आनन्द
हा है जवान!

नारायण की खिडकी से कुछ कदम परे ही, घोडे से उतर गोबिन्द रास थामे खिडकी के नीचे आ खड़ा हुआ। उस तीखी ठण्डी हवा में बाहर निकलने को नारायण का मन न हुआ। घोड़े को देखकर भी वह कम्बल में लिपटा रहा।

ग्राहक को उठते न देख गोबिन्द ने उसे सम्बोधन किया—"हुजूर, हवा खाने नहीं जायेगा ?"

नारायण मुस्करा दिया—"आज तुम खुद ही हवा खाओ !"

सिर लटका कर गोबिन्द धीरे से बोला पर नारायण ने सुन लिया—"अरे साहब, हम गरीब लोग क्या हवा खायेगा !"

"क्यों ?'—नारायण ने पूछा, "तुम्हे हवा खाना अच्छा नहीं लगता ?" सिर कुछ ऊपर उठा निराशा के से स्वर में गोबिन्द ने उत्तर दिया, "हमको तो खाने को अनाज ही नहीं मिलता, हम लोग हवा क्या खायेगा ?"

नारायण चुप हो गया, "यह सब अनुपम सौन्दर्य इसे सौन्दर्य नहीं जॅच रहा ? वह बहुत देर तक सोचता रहा······उसे केवल रोटी का शौक है·······वह हवाख़ोर नहीं ?

शम्बूक

मुदगल नगरी में शूद्रो और दासो के विद्रोह के कारण विशृङ्खला और अराजकता फैल रही थी। अपना परम्परागत धर्म, द्विजों की सेवा छोड़ शूद्र और दास मुक्ति की कामना से तपस्या करने लगे।

महर्षि बज्राहुति के कर्म-काण्ड ज्ञान और निष्ठा का यश चारो दिशाओं में फैल रहा था। महर्षि का विश्वास मिथिलाधिपति 'विदेह' जनक के आत्म-वाद में हो गया। महर्षि ने ज्ञान लाभ किया—कर्म से फल और आसक्ति का अनिवार्य सम्बन्ध है। सुकर्म का फल, सुख भी अविनाशी आत्मा को जीवन की शृंखला में बाध कर उसे मोक्ष से दूर रखता है। शाश्वत आत्मा फल की इच्छा के बंधन से मुक्त होकर ही परमानन्द पा सकता है। उस का उपाय है, कर्म से निवृत्ति !

वे अपना आश्रम छोड कर्म से निवृत्ति के लिये एकान्त में चले गये।

महर्षि बज्राहुति का दास शम्बूक भी कर्म निवृत्ति से परमानन्द प्राप्ति का रहस्य जान मुदगल नगरी मे आया। शम्बूक ने शूद्रो और दासों को उद्‌बोधन दिया—"अपनी परवशता के कारण शूद्र और दास इस लोक के सुख से वंचित हैं। यज्ञो के अनुष्ठान का साधन और अवसर न होने से वे परलोक की आशा नहीं कर सकते। उनके लिये सुख और मुक्ति का उपाय केवल कर्म निवृत्ति द्वारा मोक्ष प्राप्ति है।'

उसने कहा—"शूद्र और दास केवल भ्रम के कारण परवशता का दुख

भोगते हैं। आहार निद्रा, विश्राम और वांछित पदार्थों का न मिलना यह सब शारीरिक दुःख केवल भ्रम है। इस भ्रम को तप द्वारा प्राप्त ज्ञान के साधन से जीता जा सकता है।"

शम्बूक के ज्ञान-प्रचार और उपदेश से शूद्र और दास अपने द्विज स्वामियो के सेवा प्राप्त करने के अधिकारों से विद्रोह कर बैठे। भोजन और दूसरे नितान्त आवश्यक पदार्थों का अभाव उन्हे सताने लगा। उन के मन डगमगाने लगे। शम्बूक ने उन्हे उपदेश दिया—"दुःख का यह अनुभव केवल भ्रम है। क्षुधा से अनुभव होने वाले दुःख का उपाय है कठोर तप से शरीर को वह दुःख अनुभव न होने देना।"

अभाव के दुःख से व्याकुल शूद्र लोग अग्नि ताप कर, शूलो पर लेटकर, शरीर मे शूल गडाकर भ्रम से अनुभव होने वाले दुखो से ध्यान हटा कर मुक्ति का ज्ञान पाने की चेष्टा करने लगे।

मुद्गल का वर्णाश्रम समाज आवश्यक सेवा के अभाव मे अपने धर्म, यज्ञ, व्रत, यम-नियम के पालन मे असमर्थ हो गया। सब ओर पाप फैलने लगा।

महाज्ञानी ऋत्वक वहिं उस समय कई दिन तक चलने वाले यज्ञ का अनुष्ठान कर रहे थे। अनेक समय सें रोग-ग्रस्त उन का युवा पुत्र उन के दासो की परिचर्या में था। दासो के छोड़ जाने पर उनका रोगी पुत्र निराश्रय हो गया। पुत्र की चिन्ता से यज्ञ कार्य में लगे विप्र का मन उद्विग्न होने लगा—वे यज्ञ को अपूर्ण छोड़ने का पातक करें या रोगी, मृत्यु के भय से पीड़ित पुत्र की सेवा करें?

उन्होने निश्चय किया—पुत्र, कलत्र, धन सम्पदा यह केवल इस लोक के साथी हैं। परलोक में केवल धर्म ही साथ जायगा। यह सब सासारिक सुख पुण्य-कार्य का ही फल है इसलिये पहले पुण्य-कार्य ही सम्पन्न करना चाहिये।

यज्ञ समाप्त होने के साथ ही ऋत्वक का पुत्र उचित सेवा और परिचर्या न पा सकने के कारण मर गया। परमज्ञानी वहिं पुत्र शोक के आघात से अधीर हो उठे। उन्हे मति विभ्रम होने लगा—क्या यज्ञ के पुण्य कार्य का फल उन्हे पुत्र शोक के रूप मे मिला है? धर्म और भगवान के न्याय के प्रति उन्हे अविश्वास होने लगा।

पुत्र-शोक का भीषण उद्वेग कम होने पर महाज्ञानी वर्हि की मति स्थिर हुई। वे सोचने लगे--देवताओं का ऐसा भयंकर क्रोध बिना किसी महापाप के नही हो सकता। गूढ़ चिन्ता से उन्हे ज्ञान हुआ—वर्णाश्रम धर्म के ह्रास का महापाप चारो ओर अराजकता, अशान्ति और अन्याय फैलाये है। शूद्र और दास ब्राह्मणो और द्विजो के कर्म तपस्या द्वारा मुक्ति प्राप्ति का यत्न कर रहे है और ब्राह्मण शूद्रो के नीच कर्म करने के लिये बाध्य हैं। परम्परा का नियम भंगकर पृथ्वी को कंपा देने वाले इसी पाप के फल से पृथ्वी के देवता ब्राह्मण को युवा पुत्र का शोक हुआ। अपने निजी दुख को व्यापक रूप दे, वर्हि का हृदय इस पाप का प्रतिकार करने के लिये क्षुब्ध हो उठा।

महाज्ञानी वर्हि इस पाप की दुहाई देने भक्तवत्सल, रघुकुल सूर्य, भगवान् राम की शरण अयोध्या पहुॅचे। क्षुब्ध ब्राह्मण के आगमन का समाचार सुन भगवान नगे पाव दौडे आये और हाथ जोड़ प्रार्थना की—"हे भूदेव, पृथ्वी पर तुम्हारा बचन ही धर्म और नियम है। तुम्हारे आशीर्वाद से ही क्षत्रिय राज्य-सत्ता प्राप्त कर धर्म और न्याय की रक्षा करते हैं। ' दास सेवा के लिये प्रस्तुत है।"

महाज्ञानी वर्हि से मुदगल नगरी में छाये महापातक और द्विजो के दुख का वृतान्त सुन भक्त-वत्सल राम पृथ्वी पर धर्म रक्षा के लिये तैयार हो गये और उन्होने चतुरंगिनी सेना ले मुदगल नगरी के लिये प्रस्थान कर दिया।

शम्बूक के अनुयायी दास और शूद्र मुदगल नगर के समीप उपवन में एकत्र हो भाँति-भाँति के कठोर तपो द्वारा वासनाओ से ध्यान हटा रहे थे। शम्बूक एक गुफा में पंचाग्नि के केन्द्र में सिर नीचे और पॉव ऊपर कर वृक्षासन से तपस्या कर रहा था।

दुष्टो का दलन करने वाले भगवान राम के शूर सैनिको ने उन मुक्ति की इच्छा करने वाले धर्मद्रोही शूद्रो को बन्दी बना एक मैदान मे एकत्र कर दिया। भगवान राम हाथ मे कृपाण ले शम्बूक की गुफा में गये और उसे सिर के केशो से खींचते हुये गुफ़ा से बाहर निकाल लाये।

भय से कॉपते हुये बन्दी शूद्रो और विस्मय से ऑखे फैलाये, कर जोड़ कर खडे द्विजों की श्रेणियो के सम्मुख भगवान ने शूद्रक को पटक दिया!

अपने पाँव पर खडे हो शम्बूक ने देखा—आभापुंज, सर्वदुखहरण मोक्ष-दाता भगवान साक्षात् खडे हैं। प्रसन्नता से उसके नेत्र चमक उठे—"मेरी तपस्या सफल हुई !"—शम्बूक ने कहा, "भगवान मुझे मुक्ति-दान दीजिये !'

राजीवलोचन राम के नेत्र क्रोध से रक्त वर्ण हो गये। उन्होने शम्बूक की प्रतारणा की—"मुक्ति धर्म ब्राह्मण का है, शूद्र का नही !"

"भगवान, न्याय !"—शम्बूक ने भिक्षा मागी।

"स्वामी और ब्राह्मण का बचन ही न्याय है,—मेघ गर्जना से भगवान ने उत्तर दिया। उनका दाया हाथ कृपाण सहित शम्बूक के कंधे से ऊपर उठ गया।

शम्बूक के कातर नेत्र ऊपर उठे—"भगवान का क्या यही न्याय है ?"—उसने क्षीण स्वर में प्रार्थना की।

भगवान का क्रोध बढ गया—"मूर्ख शूद्र, ब्राह्मण का बचन ही न्याय है !" उन्होने गर्जन किया।

"तो फिर मुक्ति की भी इच्छा नहीं !'-शम्बूक ने सिर ऊँचा उठा लिया।

"महापातक"—भगवान के मुख से सक्रोध निकला और उनके हाथ का कृपाण शम्बूक के सिर को पृथ्वी पर गिरा नीचे आ गया।

भगवान ने अग्नेय नेत्रो से बन्दी शूद्रो की ओर देखा। वे लोग पृथ्वी पर सिर झुका, आधीनता से क्षमा याचना कर रहे थे।

पृथ्वी हिल उठी……।

कर जोड़ खड़े द्विजों की श्रेणी ने श्रद्धा से मस्तक झुका दिये। ब्राह्मणो ने आशीर्वाद मंत्र का उच्चारण किया। उन्होने कहा—"भगवान के न्याय से देवता प्रसन्न हुये और पृथ्वी पर धर्म की स्थापना हुई।"

भगवान राम के चरणारविंद में मन लगा विप्र और द्विज वर्णधर्म में संलग्न हो गये।